संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला प्रथम पुष्पम्

भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा

प्रधान सम्पादक
प्रो. भवेन्द्र झा
कुलपति (प्रभारी)

सम्पादक
प्रो. प्रेम कुमार शर्मा

उप-सम्पादक
डॉ. बिहारी लाल शर्मा



श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
नवदेहली-110016

संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला प्रथम पुष्पम्

भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा

प्रधान सम्पादक

प्रो. भवेन्द्र झा

कुलपति (प्रभारी)

सम्पादक

प्रो. प्रेम कुमार शर्मा

उप-सम्पादक

डॉ. बिहारी लाल शर्मा



श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

नवदेहली-16

प्रकाशक:
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानित-विश्वविद्यालय:)
कुतुबसांस्थानिकक्षेत्रम्
नवदेहली-११००१६

जुलाई, 2013

मूल्यम् : 150/- ₹

मुद्रक:
अमरप्रिंटिंगप्रैस:
देहली-११०००९
दूरभाष: : 9871699565, 8802451208

पुरोवाक्

''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'' इस सूक्ति के अनुसार पुरुषार्थ-चतुष्ट्य में धर्म प्रथम सोपान होने के कारण धर्म के साधन में शरीर का सर्वप्रथम स्थान है। धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन के लिए शरीर का स्वस्थ होना परमाश्यक है। शरीर के अस्वस्थ होने के कारण मन का विचलित होना अवश्यम्भावी है। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास सम्भव है। अतः धर्म-कर्म के सम्पादन के लिए स्वस्थ शरीर के परमोपयोगी होने के कारण शरीर के रोगारोग्य का विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। आयुर्वेदशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र ये दो ऐसे विषय हैं, जो मानव के रोगारोग्य का सम्पूर्ण रूप से विचार करते हैं। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार **''मिथ्याहारविहाराभ्यां रोगोत्पत्तिः प्रजायते''** इस उक्ति के द्वारा मिथ्या आहार और विहार से वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषों के दूषित होने से रोग उत्पन्न होते हैं, जब कि ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार **''जन्मान्तर कृतं पापं व्याधिरूपेण जायते''** जन्म-जन्मान्तरों में किया गया पाप व्याधि के रूप में उत्पन्न होता है। ज्योतिष शास्त्र और आयुर्वेद शास्त्र के इन दोनों मतों को राजा वीर सिंह तोमर ने वीरसिंहावलोक में इस प्रकार कहा है-

कर्मप्रकोपेण कदाचिदेकेदोषप्रकोपेण भवन्ति चान्ये।
तथापरे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कायमनोविकाराः[1]॥

इसका अभिप्राय है कि कभी पूववर्ती कर्मप्रकोप से कभी वात, पित्त और कफ इन त्रिदोषों के प्रकुपित होने से तथा कभी-कभी कर्मप्रकोप और दोषप्रकोप इन दोनों के मिले-जुले रूप से शारीरिक और मानासिक रोग उत्पन्न होते हैं।

आचार्य चरक ने शारीरिक रोगों का कारण वात, पित्त और कफ इन त्रिदोषों का प्रकुषित होना मानसिक रोगों का कारण रजोगुण और तमोगुण की प्रबलता कहा है-

वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शारीरो दोषसंग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च[2]॥

---

1. वीरसिंहावलोक, ज्वराधिकार, श्लो. सं. 19
2. चरक संहिता, सूत्रस्थानम्, श्लो. सं. 56

चरक संहिता में ही शारीरिक रोगों का दैवव्यपाश्रय और युक्तिव्यपाश्रय के द्वारा तथा मानसिक रोगों का ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति और समाधि के द्वारा प्रशमन कहा गया है–

प्रशाम्यत्यौषधैः पूर्वो दैवयुक्तिव्यपाश्रयैः।
मानसो ज्ञानविज्ञानधैर्यस्मृतिसमाधिभिः[3]॥

आयुर्वेद शास्त्र में मिथ्या आहार और विहार से वात–पित्त और इन त्रिदोषों के प्रकुपित होने से रोग कारण कहा है, किन्तु कभी–कभी ऐसा भी देखा गया है, कि मनुष्य के ऋतु के अनुसार आहार करने और सम्यक् प्रकार से दिनचर्या होने पर भी रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार के रोगों का कारण ज्योतिष शास्त्र में कर्म प्रकोप कहा गया है। इस प्रकार के कर्मप्रकोप की जानकारी ज्योतिष शास्त्र में सञ्चित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मों के द्वारा विस्तार से की गयी है। वस्तुतः ज्योतिषशास्त्र रोगज्ञान की एक ऐसी विधा है, जो रोग से पूर्व ही उसकी सम्भावना का विचार करके उस रोग के उपाय के द्वारा उसका निराकरण करने में सहायक है। मानव–जीवन में रोगारोग्य का समाज के प्रत्येक वर्ग से सरोकार होने के कारण विद्यापीठ के संस्थापक कुलपति पद्मश्री श्रद्धेय डॉ. मण्डन मिश्र, पूर्वकुलपति श्रद्धेय प्रो. वाचस्पति उपाध्याय एवं ज्योतिष विभाग के उन्नायक श्रद्धेय प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी जी के अथक प्रयास से विद्यापीठ के ज्योतिष–विभाग को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सैप (डी.आर.एस–I) एवं सैप (डी.आर.एस–II) कार्यक्रम दिया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ज्योतिष–विभाग द्वारा शोध एवं शिक्षण कार्य की व्यवस्था है। मैं ज्योतिष विभागाध्यक्ष एवं सैप (डी.आर.एस–II) कार्यक्रम के को–आर्डिनेटर प्रो. प्रेम कुमार शर्मा, डिप्टी को–आर्डिनेटर डॉ. बिहारी लाल शर्मा एवं ज्योतिष विभाग के सभी विद्वज्जनों को हार्दिक धन्यवाद देते हुए इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ज्योतिष–विभाग द्वारा आयोजित संगोष्ठियों एवं विशिष्ट व्याख्यानों में से विभागीय प्रकाशन समिति द्वारा मानक शोध लेखों से सुसज्जित **''भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा''** का प्रथम अङ्क–

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥''

इस समाज–कल्याण भावना के साथ सुधीजन पाठकों को समर्पित करते हुए हर्ष–प्रकर्ष का अनुभव कर रहा हूँ।

प्रो. भवेन्द्र झा
कुलपति (प्रभारी)

---

3. चरक संहिता, सूत्रस्थानम्, श्लो. सं. 56

सम्पादकीय

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च[1]।।

भारतीय शास्त्रीय विद्यायें ''धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष'' चतुर्विध पुरुषार्थ के लिए प्रवृत्त होती हैं। इस पुरुषार्थ- चतुष्ट्य के साधन का ''आरोग्य'' मूल कारण है। रोग उस श्रेय ''आरोग्य अथवा चतुर्विध पुरुषार्थ'' तथा जीवन को हरने वाले हैं। मनुष्य स्वस्थ रहते हुए ही जीवन के चरम और परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। आयुर्वेदशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र ये दो ऐसे विषय हैं, जो मानव के रोगारोग्य जीवन की सम्पूर्ण रूप से जानकारी प्रदान करते हैं। आयुर्वेद ऋग्वेद का उपवेद तथा ज्योतिषशास्त्र का वेद के षडङ्गो मैं नेत्र स्थान है। वेद से इनका उद्भव होने के कारण ये वैदिक आयुर्विज्ञान एवं वैदिक ज्योतिर्विज्ञान के नाम से प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेद वेदों में सर्वप्राचीन है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के सूक्त 97 में सम्पूर्ण सूक्त के 23 मन्त्रों में औषधियों का विस्तार से विवेचन किया गया है। उसी सूक्त में औषधियों के अतिरिक्त भिषक् (वैद्य) का लक्षण इस प्रकार दिया गया है :-

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः[2]।।

इस मन्त्र का अभिप्राय है, कि जहाँ औषाधियाँ राजा की समिति (सभा) के समान एकत्रित होती हैं, वह भिषक् कहलाता है, और वह पीड़ाओं तथा रोगों का नाशक है। इसके अतिरिक्त विभिन्न सूक्तों में औषधियों एवं रोगों के शमन का विवेचन मिलता है। यजुर्वेद के अध्याय 18 में (1) प्रैष (2) आप्री (3) प्रयाज (4) अनुयाज (5) वषट्कार (6) आहुती यज्ञ के 6 विभाग कहे गये हैं-

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य।
प्रयाजोभिरनुयाजाने वषट्कारेभिराहुतीः।।[3]

---

1. चरक संहिता प्रथमदीर्घम्जीविताध्याय श्लो. सं. 15
2. ऋग्वेद संहिता - 10.97.06
3. युजर्वेद अध्याय 18, कण्डिका 19

वस्तुतः वेदोक्त यज्ञानुष्ठान के द्वारा वैदिक मन्त्रों से वनौषधियों के हवन से वहाँ के वायुमण्डल में इस प्रकार के शक्तिशाली तत्त्व विद्यमान हो जाते हैं, जो वहाँ के आसपास के वातावरण में उत्पन्न रोगों के कीटाणुओं का नष्ट कर देते हैं। इसके अतिरिक्त यज्ञ के समीप के वातावरण के शुद्ध होने के कारण यज्ञ का धूम्र वहाँ के वातावरण में विद्यमान मेधों से मिलकर अमृतमय वृष्टि करके उस स्थान के अन्न, वनस्पतियों आदि को परिपुष्ट करते हैं। इस प्रकार के अन्न के उपयोग से रोग प्रतिरोधक क्षमता होने के कारण मनुष्य निरोग होता है। यज्ञ में मन्त्रोच्चारण की ध्वनितरंगों से मनुष्य के मानसिक विकारों का शमन होता है। इस प्रकार यज्ञानुष्ठान से मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के रोगों से मुक्त होता है। यजुर्वेद के इसी अध्याय मे गौ आदि पशुओं के पालने से दुग्ध, घृत आदि से पुरोडाश हवियों के प्राप्त होने का उल्लेख है–

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैषट्शैर्हवींᳬष्या।
छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान्[4]॥

इसी प्रकार पुष्टिवर्धक धान्य, करम्भ, सत्तू, दूध, दही, दूध में खट्टा डालने पर फटे हुए दूध के स्थूल भाग आमिक्षा (पनीर), शहद, अन्न, मूलधान्य भूने धान्य का रूप, गेहूँ हविषपंक्ति का रूप, बेरफल, सत्तूओं का रूप, और यव करम्भ का रूप, पुनः यव दूध का रूप, स्थूल बदरीफल दही का रूप, अन्न सोम का रूप और आमिक्षा सोमरस का रूप इन सभी प्रकार के अन्नादिकों का वर्णन यजुर्वेद में मिलता है–

धानः करम्भः सक्तवः परिवापः पयो दधि।
सोमस्य रूपᳬ हविष आमिक्षा वाजिनं मधु॥

धानानांᳬरूपं कुवलं परिवापस्य गोधूमाः।
सक्तूनां ᳬरूपं बदरमुपवाकाः करम्भस्य॥

पयसो रूपं यवा दघ्नो रूपं कर्कन्धूनि।
सोमस्य रूपं वाजिनंᳬसौम्यस्य रूपमामिक्षा[5]॥

अथर्ववेद में विभिन्न रोगों एवं शान्तिक पौष्टिक विधान का विस्तार से विंवेचन किया गया है। अथर्ववेद के काण्ड 6 के सूक्त 96 में रोगमुक्ति की कामना की गयी है–

या ओषधयः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्जन्त्वं हसः॥ 1॥[6]

---

4. तत्रैव अध्याय 19, कण्डिका 20
5. तत्रैव, कण्डिका 21-23
6. तत्रैव, काण्ड 6, सूक्त 96, 1-3

मुञ्चन्तु माशपथ्या इदथो वरुण्यादुत।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात्।। 2।।[6]

यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः।
सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु[6]**।। 3।।**

इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में सोम आदि औषधियों से पापरूपी रोग से मुक्ति की कामना, द्वितीय मन्त्र में दुर्वचन से हुए रोगों, जल के कारण होने वाले रोग, यम के पाशस्वरूप असाध्य रोगों, सब देवों से सम्बद्ध पापों से उत्पन्न रोगों तथा तृतीय मन्त्र में जो पाप चक्षु और मन से, वाणी सें, जागते समय और सोते समय हम करते हैं उन सभी पापों को पुनीत करके सोम से दूर करने की कामना की गयी है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के रोगों के शान्तिक एवं पौष्टिक विधान का अथर्ववेद में अनेक सूक्तों में विवेचन किया गया है।

वैदिक काल के उपरान्त रोगारोग्य के चिन्तन में आयुर्वेद ने अपना पृथक् से अस्तित्व स्थापित किया, जिसमें आचार्य चरक्, वाग्भट एवं सुश्रुत का योगदान अविस्मरणीय है। चरकसंहिता में कहा गया है, कि वैद्य को सर्वप्रथम रोग की परीक्षा करनी चाहिए, तदनन्तर औषध और तत्पश्चात रोग के निदान के लिए ज्ञानपूर्वक कर्म करना चाहिए–

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत्[6]**।।**

चरक संहिता में ही कहा गया है, कि जो वैद्य रोग का विशेषज्ञ है, सभी प्रकार की औषधियों का ज्ञाता है, देश, काल और प्रमाण को जानने वाला है, उसे निःसन्देह रोग के निदान में सफलता प्राप्त होती है–

यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः।
देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिरसंशयम्[7]**।।**

वीरसिंहावलोक में भी कहा गया है, कि जिन क्रियाओं से शरीर में धातुओं की समता हो, यही विकारों की चिकित्सा है, और यही चिकित्सक का कर्म है :-

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद् भिषजां मतम्[8]**।।**

---

6. चरकसंहिता, सूत्रस्थानम्, अध्याय 20, श्लो. सं. 19
7. वहीं श्लो. सं. 21
8. वीरसिंहावलोक, ज्वराधिकारः, श्लो. सं. 12

त्रीशठाचार्य के मत से वीरसिंहावलोक में कहा गया है, कि प्राणिमात्र का शरीर पृथ्वी, जल अग्नि, वायु तथा आकाश, इन पञ्चमहाभूतों, सत्व, रज, तम इन तीन गुणों, वात, पित्त और कफ इन त्रिदोषों से, रस – रक्त – मांस – मेद – अस्थि-मज्जा-शुक्र, इन सप्तधातुओं, मूत्र-स्वेदादि मलों तथा मर्म और शिरा आदि से व्याप्त है तथा चेतनाधिष्ठित इसी शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं–

यद्भूपयः शिखिमीरवियद्भिरे-
भिर्भूतैर्गुणैरपिच सत्त्वरजस्तमोभिः।
त्वग्दोषधातुमलमर्मशिरादिभिश्च
व्याप्तं वपुस्तनुभृतामिदमत्र रोगाः[9]॥

वस्तुतः आयुर्वेद शास्त्र में प्राकृतिक अवस्था या साम्यवस्था में वात-पित्त-कफ प्रकृति, रस-रक्त-मास-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र सप्तधातु एवं पुरीष-मूत्र-स्वेदादि मल देह को धारण करने के कारण धातु तथा इनकी विकृतावस्था या विषमावस्था के दोष या विकार होने के कारण शरीर को मलिन करने के कारण मल कहलाते हैं–

वायुः पित्तं कफो दोषा धातवश्च मला मताः।
शरीरदूषणाद्दोषा धातवो देहधारणात्॥
वातपित्तकफा ज्ञेया मलिनीकरणान्मलाः[10]॥

इस प्रकार **"मिथ्याहारविहाराभ्यां रोगोत्पत्तिः प्रजायते"** आयुर्वेद की इस उक्ति के अनुसार मिथ्या आहार और विहार के कारण वात-पित्त-कफ प्रकृति, रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र इन धातुओं और पुरीष, मूत्र-स्वेदादि मलों में विकृति होने के कारण विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

आयुर्वेद शास्त्र मे प्राणियों के स्वस्थ और रोगी होने के कारण, लक्षण और औषध का विस्तार से विवेचन किया गया है, जो कि त्रिसूत्र कहलाता है :-

हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम्।
त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः[11]॥

आयुवेद में हित भुक् और मितभुक् और ऋतु भुक् अर्थात् हितकारी भोजन, संयमित भोजन और ऋतु के अनुसार भोजन को स्वास्थ्य का आधार कहा गया है, किन्तु कई बार हितकारी भोजन, संयमित आहार और ऋतु के अनुसार आधार करने का भी मनुष्य अस्वस्थ हो जाता है। इस प्रकार के रोग का विचार ज्योतिषशास्त्र में किया गया है। प्रश्नमार्ग में कहा गया है, कि

---

9. वीरसिंहावलोक, ज्वराधिकार, आयुर्वेदशास्त्रम्, श्लो. सं. 14
10. शार्ङ्गधर संहिता
11. चरकसंहिता, सूत्रस्थानम्, अध्याय 1, श्लो. सं. 23

जन्म-जन्मान्तरों में किया गया पाप रोग के रूप में पैदा होता है, उसकी शान्ति औषधि, दान, जप, होम और पूजा आदि के अनुष्ठान से होती है–

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः[12]॥

"पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपिजननीजठरेशयनम्" पुनर्जन्मवाद एवं कर्मवाद के इस सिद्धान्त के अनुसार कर्म के तीन भेद हैं :-

1. सञ्चितकर्म 2. प्रारब्धकर्म 3. क्रियमाण कर्म।

1. **सञ्चित कर्म :** जन्म-जन्मान्तरों में किये गये शुभ और अशुभ कर्मों का सञ्चय सञ्चित कर्म कहलाता है। सञ्चित कर्म की जानकारी ज्योतिषशास्त्र द्वारा जन्मकालीन जन्माङ्ग में स्थित विविध योगों के द्वारा की जाती है। यदि जन्माङ्ग में शुभ योगों का बाहुल्य हो, तो इस जन्म में बहुलता से शुभफल का परिपाक तथा यदि अशुभयोगों का बाहुल्य हो, तो बहुलता से अशुभफल का परिपाक होता है। इस प्रकार सञ्चित कर्म की जानकारी ज्योतिषशास्त्र में प्रतिपादित योगपद्धति के द्वारा की जाती है।

2. **प्रारब्ध कर्म :-** सञ्चित कर्मों में जिस कर्म का प्रारब्ध होता है, वह प्रारब्ध कर्म कहलाता है। इसका ज्ञान ज्योतिषशास्त्र में दशापद्धति के द्वारा किया जाता है। यदि शुभयोगकारक ग्रह की दशा प्रारब्ध हो, तो शुभफल तथा यदि अशुभ योग कारक ग्रह की दशा प्रारब्ध हो, तो अशुभफल का परिपाक होता है।

3. **क्रियमाणकर्म :-** जो कर्म इस जन्म में क्रिममाण हो, उस फल की जानकारी ज्योतिष शास्त्र में गोचर पद्धति के द्वारा की जाती है।

ज्योतिष शास्त्र में जन्म-जन्मान्तर में किया गया पापकर्म व्याधि के रूप में उत्पन्न होता है। यही कर्म प्रकोप कहलाता है। वीरसिंहावलोक में कहा गया है, कि कभी-कभी कर्म प्रकोप से तथा कभी दोषप्रकोप वात्त-पित्त-कफ प्रकोप से एवं कभी कर्म और दोष-प्रकोप के मिले-जुले रूप से शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं–

कर्मप्रकोपेण कदाचिदेके दोषप्रकोपेण भवन्ति चान्ये।
तथापरे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कायमनोविकाराः[13]॥

---

12. प्रश्नमार्ग, अध्याय 13, श्लो. सं. 29
13. वीरसिंहावलोक, ज्वराधिकार, श्लो. सं. 19

आचार्य चरक के अनुसार शारीरिक रोग वात, पित्त और कफ के प्रकुपित होने पर उत्पन्न होते हैं और मानसिक रोग रजोगुण और तमोगुण के प्रबल होने पर उत्पन्न होते हैं।

वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शारीरो दोषसंग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च[14]॥

शारीरिक रोगों का दैव-व्यापाश्रय और युक्तिव्याश्रय के द्वारा तथा मानसिक रोगों का ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति और समाधि के द्वारा प्रशमन होता है।

प्रशाम्यत्यौषधैः पूर्वो दैवयुक्तिव्यपाश्रयैः।
मानसो ज्ञानविज्ञानधैर्यस्मृतिसमाधिभिः[15]॥

ज्योतिषशास्त्र में कालपुरुष के मस्तक से ले कर पैर तक विभिन्न अङ्गों में मेषादि द्वादश राशियों का विन्यास किया गया है। जैसे कालस्वरूप पुरुष का मेष-मस्तक, वृष-मुख, मिथुन-भुजा, कर्क-हृदय, सिंह-पेट, कन्या-कटिप्रदेश, तुला-बस्ति, वृश्चिक-गुप्ताङ्ग, धनु-उरू मकर- घुटना, कुम्भ-जङ्घा तथा मीन-पैर हैं।

शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिबस्तिगुह्यसंज्ञानि।
उरु जानू जङ्घे चरणाविति राशयोऽजाद्याः[16]॥

इस प्रकार मेषादि द्वादश राशियों में अङ्गविभाग के अनुसार शुभग्रह से युक्त राशि से सम्बन्धित अङ्ग पुष्ट तथा अशुभग्रह से युक्त राशि से सम्बन्धित अङ्ग उपद्रव अर्थात् रोग युक्त होता है–

कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत् प्रसवकाले।
सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च[17]॥

इसी प्रकार बृहज्जातक में सूर्यादि ग्रहों का आत्मा आदि विभाग करते हुए कालस्वरूप पुरुष की सूर्य - आत्मा, चन्द्र - मन, मंगल - सत्व, बुध - वाणी, गुरु - ज्ञान एवं सुख, शुक्र - मद तथा शनि - दुःख कहा गया है–

आत्मा रविः शीतकरस्तु चेतः सत्वं धराजः शशिजोऽथ वाणी।
ज्ञानं सुखं चेन्द्रगुरुर्मदश्च शुक्रः शनिः कालनरस्य दुःखम्॥[18]

---

14. चरक संहिता, सूत्रस्थानम्, श्लो. सं. 56
15. तत्रैव श्लो. सं. 57
16. लघुजातकम्, राशिप्रभेदाध्याय, श्लो. सं. 4
17. लघुजातकम्, राशिप्रभेदाध्याय, श्लो. सं. 5
18. लघुजातकम्, राशिप्रभेदाध्याय, श्लो. सं. 1

आत्मा आदि ग्रहों के बलवान होने पर आत्मा आदि पुष्ट तथा निर्बल होने पर आत्मा - मन आदि दुर्बल होते हैं, शनि का फल इससे विपरीत होता है :-

आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तरा:।
दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेया विपरीत: शनि: स्मृत:[19]॥

इस प्रकार मेषादि द्वादश राशियों में स्थित ग्रहों के बलाबल के अनुसार तत्तद् राशि से सम्बन्धित अङ्ग के पुष्टापुष्टत्व का निर्धारण किया गया है।

स्नाय्वस्थ्यसृक् त्वगथ शुक्रवसे च
मज्जा मन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्यभौमा:[20]॥

प्रश्नमार्ग में सूर्यादि ग्रहों के वात, पित और कफ प्रकृति के विषय में कहा गया है, सूर्य पित्त का, चन्द्र वात और कफ, मंगल पित्त, बुध त्रिदोष, गुरु कफ, शुक्र कफ और वात तथा शनि वात प्रकृति का प्रतिनिधित्व करता है।

पित्तं वातकफौ पित्तं वातपित्तकफा: कफ:।
कफवातौ च वातश्च सूर्यादिनां प्रकीर्तिता:[21]॥

इसी प्रकार प्रश्नमार्ग के द्वादशाध्याय में श्लोक संख्या 67 से 74 तक सूर्य से लेकर शनि एवं राहु-केतु तथा गुलिक के अनेक रोगों का वर्णन उपलब्ध होता है। रोग के विषय में प्रश्न मार्ग में कहा गया है कि जन्मलग्न से अष्टम राशि अथवा अष्टम स्थान को देखने वाला ग्रह काल पुरुष के जिस अङ्ग की राशि मे स्थित हो, जातक के शरीर के उस अङ्ग में रोग उत्पन्न होता है।

कालाङ्गेष्वष्टमो राशिर्ग्रहो वाष्टमवीक्षक:।
जन्मकाले स्थितो यत्र तत्राङ्गे तदगदोद्भव:[22]॥

इसी प्रकार सूर्यादि ग्रहों के जो वात, पित्त, कफादि दोष कहे गये हैं, उनमें उस-उस ग्रह के रोग कारक होने पर उस रोग से उत्पन्न होने वाला रोग कहना चाहिए-

यस्य ग्रहस्य यो दोष: पित्तादिष्विह कीर्तित:।
तेन रोगे तु वक्तव्ये वाच्यस्तद्दोषजो गद:[23]॥

---

19. लघुजातकम्, राशिप्रभेदाध्याय, श्लो. सं. 2
20. बृहज्जातक ग्रहयोनि प्रभेदाध्याय, श्लो.सं.11 उ.अ.
21. प्रश्न मार्ग, अध्याय 11 श्लो. सं 4
22. प्रश्न मार्ग, अध्याय 11 श्लो. सं 5
23. प्रश्न मार्ग, अध्याय 12 श्लो. सं 19

प्रश्न मार्ग में ग्रहयोग से सम्बन्धित रोगों के विषय में कहा गया है कि बृहज्जातक आदि होराशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थों में प्रतिपादित पापग्रहों से युत् एवं दृष्ट विविध योगों के आधार पर भी पूर्वजन्म में किए गए पाप कर्म के प्रभाव से उत्पन्न रोगों के भेदों का भी विचार करना चाहिए–

पापालोकितयोराद्यैर्योगैर्होरादिषूदितैः।
अपि ज्ञेया रुजां भेदाः प्राग्जन्मदुरितोद्भवाः[24]॥

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र के द्वारा रोगों के विभिन्न योगों एवं उन योगों से सम्बन्धित ग्रहदशा के द्वारा रोग से पूर्व ही रोग की सम्भावना का विचार करके दोषज रोगों का युक्तिव्यपाश्रय एवं कर्मज रोगों का दैवव्यपाश्रय उपायों द्वारा निदान करके रोगों से मुक्ति अथवा कष्ट को न्यूनातिन्यून किया जा सकता है। अतः **"ज्योतिर्वैद्यौनिरन्तरौ"** के आधार पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेप (डी.आर. एस. II) कार्यक्रम के अन्तर्गत ज्योतिष-विभाग द्वारा आयोजित संगोष्ठियों एवं विशिष्ट व्याख्यानों में से विभागीय प्रकाशन समिति द्वारा मानक शोधात्मक लेखों का चयन करके **भैषज्यज्योतिषमञ्जूषा** का यह प्रथम अङ्क प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। आशा है हमारा यह प्रयास रोग से ग्रस्त समाज के कल्याण के लिए सार्थक सिद्ध होगा। विद्यापीठ एवं ज्योतिष विभागीय विभिन्न पाठ्यक्रमों के उन्नयन के लिए सर्वप्रथम विद्यापीठ के संस्थापक कुलपति स्व. डॉ. मण्डन मिश्र, उन्हीं के प्रयास को चरम और परम सीमा तक पहुँचाने वाले पूर्वकुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय, ज्योतिष विभाग के उन्नायक श्रद्धेय प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी जी का स्मरण करते हुए विद्यापीठ के वर्तमान कुलपति प्रो. भवेन्द्र झा जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनके अथक प्रयास से विद्यापीठ की विभिन्न योजनायें निर्बाध गति से संचालित हो रही हैं। ज्योतिष विभाग के अध्यक्षचर प्रो. ओंकारनाथ चतुर्वेदी जी एवं आचार्य रामदेव झा जी के आशीर्वाद से ज्योतिष विभागीय विभिन्न गतिविधियों में सम्बल प्रदान करने के लिए आपका हार्दिक अभिवादन एवं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। विद्यापीठ के कुशल प्रशासक कुलसचिव डॉ. बी.के. महापात्र तथा शोध एवं प्रकाशन विभागाध्यक्ष प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय के यथा समय योगदान के लिए धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ। अन्त में वास्तुविभागाध्यक्ष प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी, सैप (डी.आर. एस. II) के डिप्टी को-ऑर्डिनेटर डॉ. बिहारीलाल शर्मा एवं प्रकाशन समिति के अपने सभी सदस्यों का हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिनके अथक प्रयास से पत्रिका के प्रथम अङ्क को समाज तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त हुई है। सामाजिक उन्नति में जीवन का जन-जन से सरोकार होने के कारण आशा है कि स्वास्थ्य की कामना करने वाले पाठक सुधीजन इन शोधलेखों से लाभान्वित होंगे तथा अपने सुझावों से हमें उपकृत करेंगे।

प्रो. प्रेम कुमार शर्मा
को-ऑर्डिनेटर, सैप (डी.आर. एस.-II)

---

24. तत्रैव, श्लोक सं. 30

सम्पादक मण्डल

विषयानुक्रमणिका

1.	मधुमेह एवं उपचार	पं. कल्याणदत्त शर्मा	1
2.	मन्त्र साधना	आचार्य शालीग्राम शर्मा	5
3.	ज्योतिष द्वारा रोग निदान	प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय	10
4.	आयुर्दाय विचार	पं. रामदेव झा	14
5.	कर्णरोगविमर्शः	डॉ. नागेन्द्र पाण्डेयः	24
6.	मानसिक रोग	डॉ. नरोत्तमदत्तशर्मा	28
7.	आयुर्वेद एवं ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से मानसिक रोग निदान	डॉ. सुभाष चन्द्र मिश्र	38
8.	नेत्र रोग	डॉ. आलोक शर्मा	49
9.	मधुमेह–कारण, लक्षण एवं उपाय	डॉ. श्रीधर द्विवेदी	54
10.	मधुमेह (Diabetes)	डॉ. संजय आचार्य	60
11.	मानसिक रोग कारण एवं उपचार	डॉ. रवि चन्द शर्मा	71
12.	ज्योतिषशास्त्र में नेत्र रोग विचार	डॉ. बिहारी लाल शर्मा	79

मधुमेह एवं उपचार

पं. कल्याणदत्त शर्मा

प्रमेहः—मेहति (सिञ्चति) मूत्र रेतसी अर्थात् प्रकर्ष रूप से अधिक मात्रा में मूत्रोत्सर्जन होते रहना प्रमेह रोग का लक्षण है। आचार्य वाग्भट्टने गन्दापन लिऐ मूत्र का बार बार आने को प्रमेहरोग का लक्षण माना है। प्रमेह रोग वातज पित्तज और कफज तीन प्रकार से होता है। आचार्य सुश्रुत ने वातज प्रमेह 4 प्रकार का माना है। सर्पिमेह, वसामेह, क्षौद्रमेह, हस्तिमेह इन चारों प्रकार के प्रमेह में क्षौद्रमेह को आचार्य चरक ने मधुमेह रोग की मान्यता प्रदान की है। वस्तुतः प्रमेहरोग अत्यधिक मात्रा में होने पर मधुमेह रोग में परिवर्त्तित हो जाता है। मधुमेह रोग को ही हकीम जयवितुसशकरी तथा पाश्चात्य विद्वान् डाईबिटीज कहतें हैं। मधुमेह असाध्य तथा इक्षुमेह जो मधुमेह का ही रूपान्तर होता है वह साध्य होता है। पित्तज प्रमेहः—प्रायः कष्ट साध्य होते हैं ये मूत्र के रंग भेद से यदि पेशाब में नीलापन नीलमेह, हरितवर्ण से हरिद्र मेह मंजीठवर्णसे मंजिष्कमेह अम्लमितिश्रतवर्ण से आम्लमेह क्षारयुक्त से क्षारमेद्य, और रक्तवर्ताके मूत्र से रक्तमेह के नाम से जाने जाते हैं। आचार्य सुश्रुत ने कफजश्रमेह को 90 भेदों में विभक्त किया है उदक, मेह, इक्षुमेह, सुरामेह, शनैर्मेह, लवणमेह, विषमेह, सान्द्रमेह, शुक्रमेह, और फेन मेह ये दश भेद माने हैं। मधुमेहोत्पत्तिः—पाचन प्रक्रिया में रक्तशर्करा को नियन्त्रित करने वाले रसायन (इनस्युलिन) की कमी के कारण रक्त में रक्तशर्करा को नियन्त्रित करने वाले रसायन (इन्स्युलिन) की कमी के कारण रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है इस कारण से मधुमेह रोग की उत्पत्ति होती है। इसरोग में बार बार पसीना आना, ज्यादा भूख प्यास लगना और बार बार पेशाब आना जाने की प्रक्रिया से शरीर में दुर्बलता आ जाती है और मानसिक चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है शरीर की कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोज का सही उपयोग नहीं कर पाना इस रोग की प्रमुख समस्या है। शर्करायुक्त पदार्थो को कार्बोहाइडेट कहते है, इन्हें भोजन द्वारा ग्रहण करने पर पाचन क्रिया द्वारा पचाकर मुख्यत ग्लूकोज में परिवर्तित कर दिया जाता है। यह ग्लूकोज आंतों से अवशेशित होकर यकृत (लीवर) में चला जाता है वहां से आवश्यक मात्रा में रक्त के माध्यम से सारे शरीर में प्रसारित कर दिया जाता है। इसे इंस्युलिन हॉर्मोन संचलित करता है। पैंक्रियाज से निकलकर प्रसारित होने की कमी से मधुमेह रोग उत्पन्न होता है, अर्थात् रक्त में शर्करा की मात्रा में वृद्धि होती रहती है।

इस रोग के दो प्रमुख कारण माने गए हैं। प्रथम जैविक द्वितीय मानसिक। जैविक प्रक्रियाओं में अनियन्त्रित जीवन सम्बन्धी अत्यधिकता के फल स्वरूप पाचन प्रणाली निष्क्रिय एवं

निर्जीव सी हो जाती है। मोटापा, अधिक भोजन एवं व्यायाम की कमी से ऐसी स्थिति बनती है, शर्कर मिष्टान्न, तथा कार्बोहाईड्रेटयुक्त पदार्थों का भोजन में अत्यधिक प्रयोग करने से इस रोग की वृद्धि होती रहती है। ऐसे पदार्थों के अधिक सेवन से प्रैंक्रियाज को अधिक मात्रा मे इंस्युलिन उत्पादन करने में अधिक दवाब पड़ता है लम्बे समय तक यह स्थिति बने रहने पर पैंक्रियाज की क्रियाशीलता मन्द पड़ जाती है अधिक शर्करा के उद्दीपन के बावजूद भी इंस्युलिन का स्राव कम हो जाता है, इंस्युलिन की कमी से शर्करा का चयापचय मन्द पड़ जाता है तथा शर्करा रक्त में ही लम्बे समय तक घुली रहने पर बाध्य हो जाती है, इसी अवस्था की उच्चरक्त शर्करा को (हाईशुगरलैवल) कहते हैं इसी वजह से गुर्दे (किडनी) से अधिक शर्करा छनकर पेशाब के साथ निकलती है यह शर्करा अपने साथ जल खैंचकर ले जाती है, इस से रोगी को बार बार पेशाब करना पड़ता है तथा शरीर में जल की कमी से अधिक प्यास लगती रहती है तथा त्वचा संक्रमण आदि रोगी के शरीर का घेर लेते हैं। कटे घाव ठीक से भरने नहीं जाने तथा दृष्टिदोष भी होने लगता है। मधुमेह का दूसरा कारण तनाव से सम्बन्धित है, मानसिक तनाव की अधिकता से रग्ड्रीनल ग्रन्थी उत्तेजित हो जाती है, इसके कारण एड्रीनल ग्रन्थी से काटोको एसटीराइड हॉर्मोन का स्राव बढ़ जाता है, इसे हॉर्मोन भी कहते हैं जो लगातार रक्त प्रवाह में घुलता रहता है। यह होर्मोन शरीर के रक्त प्रवाह में ग्लूकोज छोडने के लिए एक शक्तिशाली उत्प्रेरक का काम करता है, अब इस अधिक ग्लूकोज को कोशिकाओं के भीतर पहुंचने के लिए अधिक इंस्युलिन की आवश्यकता पड़ती है इस से प्रैंक्रियाज पर दबाव बढ़ जाता है, इस कारण इस ग्रन्थी (एड्रीनल) की कार्यक्षमता कमजोर पड़ जाती है और मधुमेह रोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं तनाव से उत्पन्न यह स्थिति जैंविक कारणों की अपेक्षा अधिक खतरनाक होती है। यह रोग प्राय उन लोगों के होता है जो तनावग्रस्त, मोटे शरीर के, कम क्रियाशील रहने वाले तथा भोजन में अधिक शक्कर व वसायुक्त पदार्थों के अधिक उपयोग करने वाले व्यक्तियों के होता है। पाचनयन्त्र पर पड़ने वाले इस दीर्घकालीन दवाव के कारण यकृत और अग्न्याशय पैंक्रियाज की ग्लूकोज नियन्त्रण प्रणाली में क्रमिक अवनति हो जाती है। इससे न केवल इंस्युलिन उत्पादन ही प्रभावित होता है वल्कि सभी शरीरिक ऊतक इंस्युलिन के प्रभाव के प्रति असंवेदन शील बन जाते है। रक्त से शर्करा की कोशिकिओं के भीतर पहुंचाने हेतु इन्स्युलिन पासपोर्ट का काम करता है इसके बिना हमारे शारीरिक ऊतक ग्लूकोज ग्रहण नहीं कर पाते, इंस्युलिन की कमी से शर्करा, रक्त प्रवाह में प्रवाहित होती रहती है फिर भी इसका उपयोग नहीं हो पाता।

ऐसी स्थिति में कोशिकाऐं ग्लूकोज के स्थान पर वसा का ऊर्जा स्रोत के रूप में प्रयोग करना आरम्भ कर देती है। लीवर से भी अधिक मात्रा में वसा एवं वसायुक्त पदार्थों का उत्सर्जन होने लगता है यह वसा रक्त नालिकाओं में जमने लगती है। इससे हृदय रोग उच्च रक्तचाप, किडनी की खराबी धमनियों का कड़ापन, नपुंसकता अन्धापर आदि रोग पनपने लगते हैं। मस्तिष्क (शिर) तथा अन्य तन्त्रिकाओं पर चयापचय असन्तुलित होने से नसों की कमजोरी अंगों का सुस्त होना पक्षाघात (लकवा) होना आदि से लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। प्रतिरक्षातन्त्र प्रणाली के कमजोर

पडने पर संक्रमण फोडे फुंसी, खुजली घावों का नहीं भरना उनमें पीव पड़कर लम्बे समय तक रिसना अंगो का सड़ना आदि रोग उत्पन्न हो जाते है। कभी कभी तो रक्त में अम्लों की मात्रा अधिक हो जाने पर गहरी बेहोशी तथा अचानक मृत्यु होने का खतरा भी बना रहता है। मधुमेह के रोगी को भोजन के पहिले इंस्युलिन के इन्जेक्शन की सूई लेना तथा जीवन पर्यन्त इसी पर निर्भर रहने से अत्यन्त कष्टदायी परिस्थिति बन जाती है। इंस्युलिन के इन्जेक्शन अधिक समयतक लेने से रक्त में शर्करा का स्तर बहुत नीचे चला जाता है। यदि रक्त में ग्लूकोज की मात्रा नीचे चलीजाय तो मस्तिष्क की कोशिकाऐं कार्य करना बन्द कर देती हैं। और व्यक्ति वेहोश हो जाता है, ऐसी स्थिति में मिठाइ, शर्बत, या शक्कर का सेवन करना चाहिए। यह एक तात्कालिक वैकल्पित व्यवस्था है। स्थायीउपचार के लिए यौगिक चिकित्सा ही सरल विकल्प है। सूर्य नमस्कार प्रतिदिन करना इस रोग में अधिक लाभप्रद होता है। मधुमेह रोगी को चावल आलू सभी मीठे पदार्थ मसाले तेल दूध तथा दूध से बने सभी पदार्थो का त्याग करना चाहिए। चोकर युक्त आटे के चपाती, हरी पत्तेदार सब्जियों सलाद व फलों का भोजन के रूप में उपयोग करना चाहिए। ज्यौतिषशास्त्र में मधुमेह रोगो का ग्रहों की स्थिति के अनुसार वर्णन किया गया है उन में से कुछ योगों का दिग्दर्शन इस लेख में किया है। (1) धनु या मीन राशि में सूर्य बुध की युति। (2) लग्न में सूर्य और सप्तमभाव में मंगल हो (3) दशमस्थ मंगल शनिसे युत या दृष्ट हो। (4) षष्ठस्थान में मंगल और षष्ठेशपापग्रहों के साथ हो। (5) अष्टम भावस्थ गुरु मंगल से दृष्ट हो। (6) लग्नमें लग्नेश नीच राशि गत है अथवा लग्नेश शत्रुराशि गत हो अथवा लग्न पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो। (7) अष्टमस्थान में शुक्र हो अथवा शुक्र की दृष्टि हो। रिपुभावगतगुरुपर पापग्रह की दृष्टि हो।

संसर्गजा दोष से मधुमेह–माता, बहिन, भाभी, तथा शूद्र द्वारा ब्राह्मणवर्ण की स्त्री से उत्पन्न (चाण्डलिनी) इन के साथ सम्भोग करने तथा ब्राह्मण के घर में स्वर्ण की चोरी से और पशु के साथ सम्भोग (मैथुन) करने से भी प्रमेह मधुमेहादि रोगों की उत्पत्ति होती है मधुमेह के पूर्व लक्षण–दन्त, जिह्वा, तालु, चक्षु, कर्ण नासिकादि में गन्दगी जमना (मलादयता) हाथ पैर और शिर में दाह व जलन होना, देह में चिकनापन, अधिक प्यास व भूख लगना, बार बार पेशाब करना मुख में मीठापन बना रहना आदि मधुमेहरोग के प्रारम्भिक लक्षण होते हैं। मधुमेह रोग का उपचार:– काद्रव (सांवा) लसोड, गेहूं चना, अरहर पुरानी कुलथी ये 7 द्रव्य मधुमेह में हितकारी हैं। अधिक तिक्तरस युक्त सब्जी, सभी प्रकार के मांस जौ, मूंग चावल इन का भोजन में त्याग करना परमावश्यक है। औषधी हारसिंगार, जटामास बालछद्र नीम की छाल खदिरसार, चित्रक विहचन, प्रश्निपरीर्प। ग्वारपाठा, आंवला देवदारु दारूहल्दी नागर मोथा हन सब को समानमात्रा में लेकर जौ कुट करकने गुड में शर्बत में मिलाकर सेवन करने से मधुमेह रोग का नाश होता है। इन का क्वाथ बनाकर उसका सेवन करना अधिक लाभ प्रद होता है। क्वाथ को दिन में 2 बार 2 तोला शहद के साथ चाटना चाहिएं हल्दी की 8 गाठें बराबर आकार की पानी में पीसकर लुग दी बनाकर शहद के साथ दिन 2 बार लेने से लाभ होता है आंवले का 20 ग्राम रस निकालकर मधु के साथ लेने से भी रोग नष्ट होता है। त्रिफला चूर्ण 2 तोला मात्रा मधु के साथ दिन में बार भी लाभ प्रद होता

है। शुद्ध शिलाजीत 3 से छरती तक शहर के साथ दिन में दो बार लेना भी रोग नाशक होता है। दारू हल्दी और त्रिफला चूर्ण समान मात्रा में लेकर चित्रक के चूर्ण में समान मात्रा में मिलाकर कपड़ छन कर मधु के साथ दिन में 2 बार लेना भी हितकारी है। सूर्य तापी उष्ण चिकना गौमूत्र जैसी गन्धवाला नीले या काले वर्षा का शुद्ध शिलाजीत का ही सेवर करने से मधुमेह रोग नष्ट होता है। न्यग्रोध (बरद वट वृक्ष) गूलर पीपल, सोनापाठा इन 4 वृक्षों की छाल अमलतास फलों का गुदा यइन और आम की छाटन (छिलका) कैथ फलका गूदा, महुवा जामुन, अर्जुन बाकली धावडा पठानी लोध वर्ना फरहद इल वृक्षों का छाल, चिरोंजी के बीज मुलेठी पटीकर मेठा शृंग (मेढासींगी) पञ्चाङ्ग दनी के बीज चित्रक की जड और छाल अरहर केबीज घीया करंज की मींगी हरड बहेडा आंवला तीनों की जड़ और छाल इन्द्रजौ के बीज घीया करंज की मींगी चिलावा, इन सब को समान मात्रा में लेकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को 5 ग्राम से 10 ग्राम तक की मात्रामें मधु के साथ लेने से तथा अनुपान में त्रिफला के क्वाथ को लेते रहने से समस्त प्रकार के प्रमेहरोग और मधुमेह रोग नष्ट हो जाता है।

मन्त्र साधना

आचार्य शालीग्राम शर्मा

विषय का अर्थबोध उसके वर्णन में सहायक होता है अतः मन्त्र साधना शब्द का अर्थ सब से पूर्व जान लेना चहिए मन्त्र साधना यह षष्ठी तत्पुरुष एक समस्त पद है। यहां पर मन्त्र शब्द मनु अवबोधनार्थक धातु से निष्पन्न है, मन्यते इति मन्त्रः इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसका मनन किया जाये उसे मन्त्र कहते हैं, यही बात निरूक्तकार यास्क ने भी कही है, मननाद् मन्त्राः' तो इस प्रकार से गुरुमुख से मन्त्रोपदेश लेकर उसके अर्थ का बार-बार अनुसन्धान करके उसका उच्चारण और अर्थबोध इतना स्पष्ट तथा सन्देह और भ्रान्ति से रहित हो जाना चाहिए कि उसकी आकृति अन्तः करण में अङ्कित हो जावे। गुरूपदेश का महत्त्व यह है कि जब शिष्य की तीव्र श्रद्धा और गुरु का शिष्यहित से पूर्ण संकल्प परस्पर मिलते है तब उस मन्त्र की साधना में अनुकूलता तथा सरलता आ जाती है। अब साधना क्या है? इसे इस प्रकार समझना चाहिए कि साधक अपनी अभिप्रेत साध्यसिद्धि को प्राप्त करने के लिए जिस प्रक्रिया या शास्त्रोक्त विधि-विधान का सहारा लेना है उस विधिविधानंका नाम साधना है। साध्यनेऽनया साधकस्य साध्यसिद्धिः इति साधना, यह व्युत्पत्ति भी इसी बात का संकेत देती है। तो इस प्रकार मन्त्रसाधना शब्द का अर्थ यह हुआ कि मन्त्र का मनन करने के लिए तथा उससे अभिप्रेत साध्य सिद्धि के लिए जिस विधि विधान का अवलम्बन लिया जाता है उसे मन्त्रसाधना कहते हैं, मन्त्र भी तीन प्रकार के हैं-तांत्रिक मन्त्र पौराणिक मन्त्र, तथा वेद मन्त्र, इनमें साध्य की सद्यः सिद्धि के लिए तान्त्रिक मन्त्र अधिक सफल हैं परन्तु विविधन्यास युद्धादि की औपचारिकतायें उनमें अधिक है। वैदिक मन्त्र जहां ईश्वरीयवाणी हैं उनका सृष्टि सञ्चालन का संविधान है वहां ऋषियों के तपः पूत अन्तः करण में इनका साक्षात्कार होने से मानव जीवन के एक अन्य लक्ष्य भूत ईश्वर प्राप्ति में अधिक महत्त्व है, इसके अतिरिक्त इनमें भी अधिकारी की व्याह्याभ्यन्तर शुचिता तथा सदाचार की अधिक अपेक्षा के कारण आज के अशुचि और सदाचार हीन मानव समाज में कलियुग का प्रभाव होने से साधना में कठिनता की अनुभूति हो रही है। अब रहे पौराणिक मन्त्र उनमें पूर्वोक्त दोनों बातों की शिथिलता होने से वे साधना में सरल पड़ते हैं, दूसरी बात यह भी है कि बीजान्यक तान्त्रिक मन्त्रों से तथा अतिकठिन वैदिक भाषा में पदपौर्वार्य तथा नियन वाचों युक्ति का नियम होने से वेदमन्त्र अर्थ वोध में दुर्गम हैं परन्तु पौराणिक मन्त्र अर्थ बोध में सुगम हैं।

उदाहरण के रूप में ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, यह श्रीमद्भागवत का पौराणिक मन्त्र है, इसका जप करते समय अर्थानुसंधान भी बड़ी सरलता से हो जाता है जैसे–ओं–इस प्रणव का वाच्यार्थ जो निर्गुण निराकार परब्रह्म है वही वासुदेव यानी वसति सकलं जगत यस्मिन् स:सविग्रह से सर्वाधार और सर्वाधिष्ठान, तथा बसति सकले जगति य: स: इस विग्रह से सर्वव्यापक सर्वन्नियामी सर्वशास्त्रा सर्वेश्वर देवाधिदेव है, तथा जो वासुदेव है वही भगवान यानी सम्पूर्ण ऐश्वर्य संपूर्ण धर्म, निष्कलंक परिपूर्ण यश समस्त श्री पूर्ण वैराग्य तथा सर्वज्ञता पूर्ण ज्ञान इन छः तत्वों से युक्त भगवान है उन ॐ पदवाच्य वासुदेव भगवान् के चरणों में मेरा प्रणिपान पूर्वक नमस्कार है। थोड़े से परिश्रम से यह अर्थ बोध हो जाता है। श्रीमद्भागवत में भी यही बात कही है कि:–

वदन्ति त तद्विदस्नाचं यज्ज्ञानयभव्यपम्।
ब्रह्मेति परमान्येति भगवानिति शक्यते।।

तत्ववेत्ता महापुरुष जिस निर्विकार अखण्ड ज्ञान को तत्व कहते हैं वही प्रणव वाच्य ब्रह्म है वही सर्वव्यापक वासुदेव परमान्या है, तथा वही षड्विधैश्वर्य सम्पन्न भगवान् है। इस अर्थ में गोस्वामी तुलसी दास जी की यह उक्ति निर्गुण सगुण नहि कछु भेदा निर्गुण निराकार में तथा सगुण साकार में तनिक भी भेद नहीं है, जो निर्गुण निराकार ब्रह्म है वही सगुण साकार वासुदेव या परमात्मा है, और जो ब्रह्म और परमात्मा है वही भगवान है। इस तरह पौराणिक मन्त्र अपेक्षा कृत सरल हैं।

तो यह मन्त्र साधना एक महत्त्वपूर्ण तथा विचार सापेक्ष विषय होते हुए भी उपासना का अंग भी है। अब इसी बात के स्पष्टीकरण के लिए पहले उपासना के सम्बन्ध में संक्षेप से कुछ कहा जावेगा। उपासना एक परमात्मा प्राप्ति का सरलतम मार्ग है यह वेद प्रतिपादित तीन काण्डों में एक काण्ड है, कर्मकण्ड, उपासना काण्ड, ज्ञानकांड ये वेद में वर्णित तीन काण्ड है, काण्ड यद्यपि एक नल (नड़) नामक पौधे का एक पोरा है, और इसे पोरा कह कर इन तीनों काण्डों की परस्पर सम्बद्धता तथा पूरकमा सूचित की है, यहां लक्षण से काण्ड का अर्थ एक विशेष प्रकरण है तो वेद के जिस प्रकरण में उपासना का विधि विधान वताया गया है उसे उपासना काण्ड के नाम से ख्याति प्राप्त है। उपासना का स्वरूप उपासना शब्द की व्युत्पति के द्वारा जितना समझा जा सकेगा उतना अन्य प्रकार से सम्भवतः नहीं समझा जा सकेगा। इस शब्द की व्युत्पति करण अधि कर और भाव इन तीन प्रकारों से हो सकती है–उपास्यते साधकेन स्वसमीपं प्राप्यन्ने आराध्य देवोऽन्या सा–उपासना जिस विधि विधान के द्वारा साधक अपने आराध्य परमात्मा की अधिक से अधिक समीपता हृदय में प्राप्त कर लेता है उसे उपासना कहते हैं। अथवा उप–आराध्य देवस्य समीपे साधकरूप आसनं स्थितिः यस्यां सा उपासना अथवा उप आराध्यदेवस्य समीप आसनं स्थिति उपासना। थोड़े से शाब्दिक अन्तर से इन का भी वही अर्थ है जो प्रथम का है, तो इस प्रकार साधककी साध्यसिद्धि की प्राप्ति के अनुकूल आराधय विषयक अन्य प्रन्य यानन्तरित वृति विशेष का नाम उपासन है। इस उपासना को और स्पष्ट रूप से समझने के लिए निम्न प्रकार से भी

विचारा जा सकता है उपासना को पुरुषाकार यदि मान लिया जावे तो कर्मयोग उपासना का शरीर है, तथा भक्ति उसका प्राण है, तो इस प्रकार उपासना का क्रियान्यक पक्ष कर्मयोग के रूप में है, तथा भावात्मक पक्ष भक्ति के रूप में है अतः भगवद्भक्ति और कर्म योग दोनों परस्पर मिल कर उपासना है, इस सम्बन्ध में अधिक न कह कर एक अनिसंक्षिप्त चर्चा भक्ति के सम्बन्ध में करनी है, श्रद्धा स्थायीभाव वाला एक रसविशेष भक्ति है इसके तीन भेद या तीन अवस्थायें हैं, साधन रूपा, शगात्मिका और ज्ञानरूपा, इन में अधिक विस्तार से वचने के लिए केवल साधन भक्ति के कुछ अंशों का वर्णन यहां अपेक्षित होने से किया जायेगा। श्रवण कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन दास्य, सख्य आत्मनिवेदन से भेद हैं, उसे ही नवधा भक्ति के नाम से ख्याति प्राप्त है। इनमें प्रारम्भ की पांच अवस्थाओं का संक्षिप वर्णन अपेक्षित है। कोई भी मनुष्य पूर्वजन्मों के पुण्यकर्मो के फलस्वरूप जब अपने कल्याण की कामना से परमात्मा प्राप्ति के लिए इच्छा करता है तब एक भुभुक्षु साधक कहलाता है, तब वह ज्ञानी और भगवद्भृत्य महापुरुषों के सत्संग में जाना प्रारम्भ कर देता है, इस सत्संग में वह जब सन्तो के मुख से परात्परपरमात्मा की दिव्य लीलाओं का उनके अनन्त दिव्य गुणों का उनके नाम और प्रभाव का वर्णन सुनता है तब वही परमात्म प्राप्ति की इच्छा उस साधक में भवच्चरणों का अनुराग उत्पन्न कर देती हैं, और वह ज्यों नित्य प्रति सत्संग का सेवन करता है त्यों-त्यों वह अनुराग बढकर परमात्मा के प्रति तीव्र श्रद्धा और भक्ति का रूप धारण कर लेता है। और तब वह प्रेमोन्मत्र होकर भगवन्नाम संकीर्तन प्रारम्भ कर देता है, इस नाम संकीर्तन के प्रभाव से हृदय में नामी के भावान्य स्वरूप का प्रकाश हो जाता है, तब वह उसी स्वरूप के स्मरण और चिन्तन में तन्मय हो जाता है, इस अवस्था में उसे भगवान के विग्रह ही मूर्ति के रूप में अर्चना करने की तीव्र इच्छा जागृत हो जाती है, और जब नित्य प्रति आरती और परिक्रमा पर्यपूजा पूजा कर लेता है नव श्रद्धातिरेक के कारण भगवान् के स्त्रोत्र पाठ के द्वारा उनकी स्तुति करता है, तथा इतने से भी सन्तुष्टि न होने से भगवान के किसी प्रिय मन्त्र का जप करता है इस समय की यही मन्त्रजप मन्त्र साधना कहा जाता है जब मन्त्र का जप ही मन्त्र साधना है और जप एक यह है तो इसका अर्थ हुआ कि साधक मन्त्र जप में ईश्वर का यजन करता है, ईश्वर या देव के यजन में वेद की आज्ञा है कि देवो भूत्वा यजेद् देवं नादेवो देवमर्चयेन् देवता का यजन साधक को स्वयं भी देव वन कर ही करना चाहिए, जा स्वयं में देव नहीं है वह देव पूजा का अधिकारी नहीं हो सकता। तो इस प्रकार देव पूजा से पूर्व स्वयं में दिव्यता का सम्पादन आवश्यक है, तो इस दिव्यता के लिए भगवान् द्वारा गीता के षोड्श अध्याय में वर्णित दैवी सम्पदा के अभयं सन्वसं शुद्धि आदि गुण होने चाहिए तथापि वाह्याभ्यंतर शुचिता तथा सदाचार का होना तो परमावश्यक है। इसके लिए साधक को प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठकर शौच स्नान शुद्ध वस्त्र पहन कर चैलाजिन कुशोतर आसन पर सिद्ध स्वस्तिकादि किसी भी आसन में सुखपूर्वक स्थिरता से बैठ कर प्राणायाम के अभ्यास से प्राणशोधन पूर्वक मन की एकाग्रता का अभ्यास करना चाहिए, फिर मार्जन मन्त्रों से मन्त्र स्नान भस्मधारण से भस्म स्नान सूर्योदय से आतप स्नान करके पूर्ण बाह्यशुद्धि होने पर गायत्री जप से मन और बुद्धि की शुद्धि हो जाती है, तदनन्तर यमनियमों का पालन करते हुए

आराधय देव का षोड़शोपचार पूजन और फिर जप का संकल्प करके जप्य मन्त्र का विनियोग करना चाहिए। विनियोग में उस मन्त्र के द्रष्टा ऋषि मन्त्र प्रतिपाद्य देवता, छन्द और अभीष्ट कामना में मन्त्र का विनियोग हो जाना है। तदनन्तर साधक को अपने आप को मन्त्रमय बनाने के लिए ऋषि आदि का तथा मन्त्र का करन्यास और हृदयादिन्यास करना चाहिए। तदनन्तर मन्त्र द्वारा आरध्य देव का हृदय भें ध्यान तथा मानस पूजन करके माला के द्वारा मन्त्र जप प्रारम्भ कर देना चाहिए। माला के द्वारा जप विधान का कारण यह है कि प्रतिदिन उत्तरोतर जप संख्या में ह्रास न करते हुए यथा शक्ति उतरोत्तर वर्धमान ही जप हो तो अच्छा है, यहाँ माला में चैतन्य सम्पादन के लिए उसका पूजन भी अपेक्षित है। जप किस प्रकार करना चाहिए तथा उसके कितने भेद है, यह बताकर विषय का उपसंहार किया जायेगा। मन्त्र के बार-बार उच्चारण रूप अभ्यास का नाम जप है, इसमें मन्त्र के पदों और वर्णो का उच्चारण यथास्थान मधुर स्फुट और स्पष्ट होना चाहिए, मन्त्र के उच्चारण से मानव देह में और विशेष रूप से हृदय में एक प्रकार की दिव्य तरंगें बनती हैं, अतः मन्त्रोच्चारण शुद्ध होना चाहिए, इसके साथ मन्त्र के अर्थ का अनुसंधान भी होना चाहिए क्योंकि अर्थानुसधान से मन्त्र के भाव की वृत्ति बनती है, तो इस प्रकार ध्यान, आराध्यदेव मन्त्र का उच्चारणात्मक स्वरूप तथा मन्त्र का अर्थ इन तीनों पर बार-बार गन को घुमाते हुए इन्हीं तीनों में मन को एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिए इसी का नाम मन्त्र जप है, जब माला पूरी हो जावे तो 109 संख्या वाले सुमेरू का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए, उसे घूमाकर वहीं से दूसरी माला प्रारम्भ कर देनी चाहिए, इस से एक लम्बी सहस्र या लक्ष की संख्या वन जावेगी, यदि सुमेरू का अतिक्रण करके जप करें तो 108 की अलग-अलग संख्यायें बनेंगी, तब यह, तो कह सकेंगे कि दश मालायें जप हो गया परन्तु यह नहीं कह सकते कि एक सहस्र जप हो गया कोई कह सकता है कि मानसिक योग करके ज्ञान हो जावेगा कि सहस्र हो गया यह बात भी संभव नहीं है क्योंकि प्रन्येक माला में 8 संख्या अतिरिक्त है जो कि सहस्र संख्या की गणना में नहीं ली जाती है तो यह जप की सामान्य विधि है। अब इसके भेदों पर विचार करेंगे-जप के तीन प्रकार या भेद हैं, प्रथम उच्चै जप दूसरा उपांशु जप, तीसरा मानस जप।

उच्च जप का प्रकार यह है कि मन्त्राक्षरों का पदों के रूप में उच्चारण तो मधुर स्फुट और स्पष्ट तो होना ही चाहिए उसके साथ अर्थ का अनुसन्धान भी होना चाहिए, इस उच्चै जप में मन को मन्त्रोंचारण सुनने को मिल रहा है, और तदनुसार अर्थ बोध भी होने जा रहा है इससे मन की एकाग्रता में सुविधा प्राप्त होती है ऊँचे उच्चारण करने से मन इधर उधर कम जाता है संसार धीरे-धीरे विस्मृत होता जाता है उससे वैराग्य होकर अभ्यास पुष्ट होता है, और ये दोनों मिल कर मन को जपनिष्ट बनाते जाते है, जब तक मन इस जप के अभ्यास में पूर्ण एकाग्र होने लग पड़े तव तक इसी जप का अभ्यास चलना चाहिए। इसमें जब मन की एकाग्रता पूर्ण हो जावे तव साधक को उपाशुं जप में प्रवेश करना चाहिए। उपांशुजप इससे सूक्ष्म है, इस जप में कण्ठ में ही वायु को रोक कर मन्त्रोंचारण होता है, उच्चे जप में तो कण्ठतालुमूर्थादि सभी स्थानों में यथास्थान और यथाप्रयत्न वर्णोच्चारण होता है, यहां पर कण्ठ में ही नाभि से उठाये हुए प्राणवायु को कण्ठ

में ही रोककर वहीं कल्पित स्थानों में कल्पनात्मक मन्त्रोचारण होता है इसमें मन को अधिक सावधान वनाना पड़ता है, इस में मन में जरा सा प्रमाद या आलस्य आया तो मन सांसारिक विषयों में आजावेगा, अतः बहुत सावधानी की आवश्यकता है, इस जप का उच्चारण केवल जापक को ही सुनाई देता है, जबकि उच्चै जप में पार्श्ववर्ती को सुनाई देना चाहिए जिससे अशुद्धि होने पर वह उसे सावधान कर दे। उपांशुजप में वैराग्य को तथा अभ्यास को पूर्व की अपेक्षा अधिक वलवान होना चाहिए। इस जप में भी जब मन पूर्ण एकाग्र होना लग पड़े तव साधक को अनस जप में प्रवेश करना चाहिए। यह जप हृदय प्रदेश में ध्येय देव के सन्निधान में मन और आत्मा या तद्रूप बुद्धि के संयोग से केवल मन में ही होता है यहां मन ही वर्णों और पदों के रूप में परिणत होकर वही उच्चारण वनेगा तदाकार ही अर्थानुसन्धान और ध्येयाकार वृत्ति बनेगी, इस जप के सर्वथा मन पर ही आश्रित होने से इसमें मन की सावधानी सब से अधिक अपेक्षित होती है, और दृढ, होना अत्यावश्यक है, यह जप मानस वृति रूप होने से ध्येय प्रधान होता है उच्चारण और अर्थ अपेक्षाकृत गौण हो जाते है अभ्यास करते करते ध्यान इतना परिपक्व हो जाता है कि उच्चारण अर्थ के मन में स्वतः चलते रहने पर ध्याता और ध्यान का अन्तर्धान होकर केवल ध्येयाकार वृत्ति में मन समाहित भी हो जाता है। यही मन्त्र साधना की पूर्णता या चरम स्थिति है यहां साध्य सिद्धि में तनिक भी सन्देह नहीं रहता है बल्कि ध्येय साक्षात्कार भी हो सकता है। तो इस प्रकार मन्त्रसाधना कोई नई वस्तु या स्वतन्त्र तत्व नहीं है, किन्तु अनेक वार अनुभूत शास्त्रोक्त या ऋषि प्रोक्त विधि का आश्रय लेकर उसके अनुसार प्रथम उच्चै जप के मार्ग को तप किया फिर उपाशु जप के मार्ग को लांघ कर मानस जप में आकर मन्त्र साधना की परिपूर्णता प्राप्त हो जाती है।

कोई विद्वान् किसी मन्त्र के जपयज्ञ के द्वारा किसी यजमान का अनुष्ठान करते समय यदि मनोरञ्जन के लिए टीवी आदि अधिक देखता है या परस्पर वार्तालाप में आनन्द लेता है तो जप तो हो जावेगा परन्तु उसमें मन की एकाग्रता कुछ सन्दिग्ध रहेगी, अतःवाणी और इन्द्रियों का संयम आवश्यक है। परकीय जाप में संकल्प वाक्य में करिष्ये के स्थान में करिष्यामि का प्रयोग होना चाहिए। यहां एक बात और ध्यान देने की है कि यदि कोई साधक मानस जप में सक्षम न हो तो उसे उच्चैः उपांशु का ही अभ्यास करना चाहिए। उपांशु की असमर्थता में उच्चैः ही पर्याप्त है; क्योंकि अनाधिकार चेष्टा लाभदायक नहीं होती है। यहाँ तक मन्त्र साधना लेख का पूर्वार्ध पूर्ण समझना चाहिए। विविधकामनाओं में अनेक रोगों के शमनार्थ तथा ग्रहजन्य अरिष्ट के शमनार्थ भी मन्त्रों का प्रयोग होता है यह उतरार्थ का विषय है।

ज्योतिष द्वारा रोग निदान

प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय

भारतीय वाङ्मय में आयुर्वेद और ज्योतिष, विज्ञान की ये प्रमुख दो धारायें वैदिक काल से ही चली आ रही हैं। दोनों धारायें पृथक-पृथक होते हुए भी परस्पर अभिन्न हैं। इन्हें एक दूसरे का पूरक भी कहा जा सकता है। मानव मात्र का कल्याण एवं व्याधियों से मुक्ति दिलाना ही दोनों के प्रमुख उद्देश्य हैं। अन्तर इतना ही है, कि ज्योतिष व्याधि आने के पूर्व ही सूचित कर देता है तथा आयुर्वेद व्याधि से ग्रसित हो जाने के बाद चिकित्सा द्वारा आरोग्य प्रदान करता है। यही कारण है, कि जब हम एक की चर्चा करते हैं, तो दूसरे के उल्लेख का प्रसंग स्वयं उपस्थित हो जाता है। दोनों विधाओं में व्याधियों के दो प्रमुख कारण बताये गये हैं–1. कर्मज, 2. दोषज।[1]

कर्मज व्याधियाँ पूर्वजन्मार्जित कर्मों अथवा पापों के परिणाम स्वरूप होती हैं तथा दोषज व्याधियाँ आहार-विहार के व्यतिक्रम, असंयम एवं वात-पित्त-कफ के विकार से होती हैं।

फलितज्योतिष शास्त्र का सिद्धान्त ही पूर्वजन्म पर आधारित है।[2] क्योंकि पूर्व जन्म में किये गये शुभाशुभ कर्मों के परिपाक ही वर्तमान जन्म में सुख, दुःख एवं व्याधि के रूप में प्राप्त होते हैं। अतः पूर्व जन्म का सम्बन्ध जन्मान्तर में भी लक्षित होता रहता है। इन्हीं सम्बन्धों के अनुसार अगला जन्म सुनिश्चित होता है। पूर्व जन्मानुसार ही आधान होता है तथा आधान काल से ही गर्भस्थ शिशु के शारीरिक विकास-क्रम का ज्ञान हमें ग्रहों के माध्यम से होता रहता है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने गर्भावस्था का वर्णन करते हुए कहा है–प्रथम मास में रक्त, रज, वीर्यादि का सञ्चय, (कलल) तथा द्वितीयादि मासों में क्रमशः 2. पिण्ड, 3. अवयव, 4. अस्थि, 5, त्वक्, 6. रोम, 7. स्मृति, 8. अशन, 9. उद्वेग, 10. प्रसव। इन मासों के स्वामी भी क्रमशः शुक्र, मंगल, गुरु, सूर्य, चन्द्र, शनि, बुध, लग्नेश, चन्द्र तथा सूर्य होते हैं। इन ग्रहों की अवस्थाओं के अनुसार ही गर्भस्थ शिशु के विकास एवं ह्रास का ज्ञान किया जाता है[3]। इसी प्रकार जन्मकालिक ग्रहस्थिति के आधार पर सम्पूर्ण जीवन की शुभाशुभ घटनाओं का विवरण जाना जा सकता है। जीवन का महत्वपूर्ण अंग व्यक्ति का स्वास्थ्य होता है। इसकी सुरक्षा में बाधक व्याधियाँ होती हैं। कहा गया है–शरीरं व्याधिमन्दिरम्। अतः इनकी सदैव सुरक्षा आवश्यक है। इस दिशा में ज्योतिषशास्त्र ही सर्वाधिक सहयोगी सिद्ध होता है, क्योंकि जन्म काल से ही सम्भावित व्याधियों की सूचना सरलता से सुलभ हो जाती है। उदाहरणार्थ कुछ व्याधियों के विवरण ज्योतिष और आयुर्वेद की दृष्टि से प्रस्तुत हैं।

अधिकांश व्याधियों का मूलस्थान उदर ही है। अतः सर्वप्रथम उदर रोग का ही विचार करते हैं। सामान्यतया लग्नेश 6, 8 तथा 12 वें भाव के स्वामी लग्न में हों अथवा लग्नेश दुर्बल हो तथा लग्न में क्रूर ग्रह स्थित हों, तो जातक अनेक प्रकार की व्याधियों से पीडित होता है[4]। सातवें भाव में राहु अथवा केतु हो अथवा आठवें भाव में शनि तथा लग्न में चन्द्र हो, तो उदर रोग होता है[5]। इसी प्रकार लग्न में षष्ठेश विषम राशि में हो तथा लग्नेश भी वक्रग्रह की राशि में हो, अष्टम में शनि तथा लग्न में चन्द्र हो, चतुर्थेश और लग्नेश षष्ठ में हों तथा पञ्चम में पापयुक्त वक्री ग्रह हों[6], इत्यादि अनेक योग हैं, इनमें से कोई भी स्थिति होने पर उदर व्याधि होती है। इसी प्रकार विभिन्न ग्रहों के योग से विभिन्न प्रकार के उदर रोग होते हैं। आयुर्वेद में भी आठ प्रकार के उदर रोगों का उल्लेख मिलता है। जो इस प्रकार हैं–1. वातज, 2. कफज, 3. पित्तज, 4. सन्निपातज, 5. प्लीहोदर, 6. बद्धोदर, 7. क्षतोदर, 8. जलोदर[7]। इनके कारणों का उल्लेख करते हुए लिखा है–

रोगा सर्वेऽतिमन्दाग्नौ सुतरामुदराणि च।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्यैः जायन्ते मलसञ्चयात्[8]॥

अर्थात् उदर में मन्दाग्नि होने, अजीर्ण होने तथा मलावरोध होने के कारण (यद्यपि ये तीनों स्थितियाँ परस्पर सम्बद्ध हैं) उदर व्याधियाँ होती हैं। इसी आशय को वीरसिंहावलोक में भी दूसरे शब्दों में कहा गया है–

रुध्वा श्वेदाम्बुवाहिनी दोषस्रोतांसि सञ्चिता।
प्राणाग्न्यपानान् सन्दूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम्[9]॥

उदर रोगों का प्रभाव शरीर के अन्य भागों पर भी पड़ता है। कभी कभी उदर व्याधि के कारण हृदय रोग की सम्भावना हो जाती है। आहार-विहार का असन्तुलन अनेक रोगों को आमन्त्रित करता है। ज्योतिषशास्त्र में हृदयरोग का कारक मुख्यरूप से सूर्य और चन्द्र को माना गया है। इन दोनों का सम्बन्ध उदर से भी है। सूर्य की राशि सिंह उदर की तथा चन्द्र की राशि कर्क हृदय रोग की कारक कही गई है। किन्तु ये दोनों ग्रह और दोनों राशियाँ हृदय रोग कारक कहीं गई हैं। उनके अतिरिक्त मङ्गल और शनि भी हृदय रोग कारक होते हैं क्योंकि हृदय रोग भी अनेक प्रकार के होते हैं तथा उनके कारण भी अनेक होते हैं। आयुर्वेद हृदय रोग के प्रमुख पाँच भेदों को बताता है–1. वातिक, 2. पैत्तिकः 3. श्लैष्मिक, 4. सान्निपातिक, तथा 5. कृमिज। इसके साथ-साथ रोग के कारणों को बतलाते हुए कहा है–

अत्युष्णागुर्वन्नकषायतिक्तश्रमाभिघाताध्यशनप्रसंगैः।
सञ्चिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः स्मृतः[10]॥

इनके अतिरिक्त भी अनेक कारण हृदय रोग के होते हैं, जिनका उल्लेख इस प्रकार किया गया है–

वैवर्ण्यमूर्छाज्चरकासहिक्काश्वाँसस्य वैरस्य तृषाप्रमेहाः।
छर्दिकफोत्क्लेशरुजोऽरुचिश्वहृद्रोगजा विविधास्तथान्ये[11]॥

रोगों की विविधता के कारण सूर्य–चन्द्रमा के अतिरिक्त अन्य ग्रह भी हृदय रोग के कारण होते हैं। यथा–

1. तुर्ये इज्यारार्कजा हृद्रोगी[12]।

2. हृद्रोगी पञ्चमे पापे सपापे च रसातले।

क्रूरषष्ठ्यंशसंयुक्ते शुभदृग्योगवर्जिते[13]॥

उक्त प्रथम योग में बृहस्पति, मंगल और शनि हृदयरोग कारक दर्शाये गये हैं तथा दूसरे योग में काई भी पापग्रह चतुर्थ पञ्चम में या क्रूर षष्ठ्यंश में शुभदृष्टि से रहित होकर हृदयरोग का कारक बन सकता है।

विशेष परिस्थिति में यही ग्रह प्रमेह कारक भी हो जाते हैं। जैसा कि कहा गया है–

मन्दार्कशुक्राः पञ्चमस्थाः प्रमेहाः[14]।

यहाँ शनि, सूर्य और शुक्र पञ्चम भाव में स्थित होकर प्रमेह कारक हो रहे हैं। इसी प्रकार बृहस्पति के क्षेत्र में बुध सूर्य से दृष्ट होकर प्रमेह और पथरी का कारक हो रहा है[15]। अतः यह स्पष्ट है, कि कोई भी ग्रह परिस्थिति विशेष में किसी भी रोग का कारक हो सकता है, क्योंकि रोग भी किसी एक ही कारण से नहीं होते हैं। उदाहरणार्थ प्रमेह के ही प्रमुख तीन भेद हैं–

1. वसा मेही, 2. सर्पि मेही, 3. क्षौद्र मेही। इन तीनों के भी वात, पित्त और कफ के आधार पर बीस उपभेद होते हैं। यथा वातज प्रमेह के 4 भेद, पित्तज के 6 भेद तथा कफज के 10 भेद होते हैं। कुल 20 भेद।[16]

इनका विचार करते समय ग्रहों के वातज, पित्तज एवं कफज प्रकृतियों का भी ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक होगा, अन्यथा समुचित निदान सम्भव नहीं हो सकेगा। साथ ही ग्रहों के आधार पर जातक की प्रवृत्तियों को भी समझना रोग के निर्धारण में सहायक होगा, क्योंकि कुछ रोग मनुष्य की प्रवृत्तियों के कारण भी होते हैं। जैसा कि कहा गया है–

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्योदकानूपरसापयाँसि।
नवान्नपानं गुडवैकृतञ्च प्रमेहहेतुः कफकृच्च्य सर्वम्।[17]।

अर्थात् शय्यासुख, स्वप्नसुख, दधिसेवन, कूपोदक, झील या तालाब के जल का सेवन नये अन्न का सेवन, गुड के विकार (चीनी) का सेवन तथा कफ कारक वस्तुओं का सेवन प्रमेह रोग की सम्भावनाओं को बढ़ाता है। मनुष्य की इन प्रवृत्तियों को ग्रहों के द्वारा सहज ही जाना जा सकता है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, कि ज्योतिषशास्त्र मनुष्य को स्वस्थ रखने तथा रोगों के निदान में अत्यन्त सहयोगी होगा। आयुर्वेद और ज्योतिष दोनों मिलकर, 'सर्वे सन्तु निरामया', इस वैदिक कामना को सफल करने में सक्षम हो सकते हैं।

इति शम्

---

1. कर्मजा व्याधयः केचित् दोषजा सन्ति चापरे।
   अन्यच्च-जन्मान्तर कृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।। (हारीतः)
2. यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिं
   व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।। ल. जा. 1.3
3. कललघनावयवास्थित्वक् रोमस्मृतितमुद्भवाः क्रमशः
   मासेषु शुक्रकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किसौम्यानाम्। लघुजातक 5.6
4. देहाधीशः सपापो व्ययरिपुमृतिगश्चेत्तदा देहसौख्यं न स्यात्।
   .... व्याधिमाधिप्रकोपम्।। जातकालंकार 2.2
5. मन्दे राहुकेतू उदररोगः रन्ध्रे मन्दे लग्ने चन्द्रे उदररोगः। जातकतत्वम् षष्ठभावः 59-60
6. प्राग्लग्ने विषमोदये सगदपेवक्रर्क्षगेऽप्यंगके इत्यादिः। गदावली 2.28-30
7. पृथग्दोषैस्समस्तैश्वप्लीहबद्धक्षतोदकैः
   सम्भवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिङ्गं पृथक् पृथक्। माधव नि. उ. नि. 4
8. माधव निदानम्, उ. नि. 1
9. वीरसिंहावलोक पृ. 348 श्लो. 14, माधव. नि. उ नि. 2
10. अत्युष्णगुर्वन्नकषायतिक्तेत्यादिः।। वीरसिंहवलोकः पृ. 301 श्लोक 3
11. चरकः (उद्धृतम वीरसिंहावलोके पृ. 299)
12. जातकतत्त्वम् 6.53
13. जातक परिजात 13.69
14. जातक तत्वम् 6.107
15. शूरं प्रमेहपीडितम् अश्वमर्योपहतमानसं शान्तम्।
    जनयति रविणा दृष्टो जीवगृहे चन्द्रजं पुरुषम्।। वीरसिंहावलोकः पृ. 322 श्लो.।
16. वीरसिंहवलोकः पृ. 321
17. वीरसिंहवलोकः पृ. 325 श्लो 8

आयुर्दाय विचार

पं. रामदेव झा

भारतीय मनीषा अनादिकाल से अप्राप्त, अदृष्ट अश्रुत, अज्ञात, अनधिगत एवं अनागत की खोज में सतत तल्लीन रही है। प्राप्त से अप्राप्त गम्य से अगम्य, ज्ञात से अज्ञात, चिन्त्य से अचिन्त्य ग्राह्य से अग्राह्य, दृष्ट से अदृष्ट, श्रुत से अश्रुत एवं अधिगत से अनधिगत को जानने तथा उसका साक्षात्कार करने का निरन्तर प्रयास करती रही है। क्योंकि बुद्धि, तर्क, प्रज्ञा एवं जिज्ञासा संप्राप्त, संदृष्ट, संश्रुत, सुविज्ञान उनधिगत, आगत (वर्तमान) से कभी सन्तुष्ट नहीं हुई। उसमें अदृश्य, अचिन्त्य अगम्य अज्ञेय एवं अतर्क्य परात्पर तत्व एवं उसके रहस्यों के प्रति अनन्तकाल से जिज्ञासा बनी रही है। अतएव वह सृष्टि की पहली प्रभात किरण से ही जानना चाहती रही है कि ''अविज्ञानं केन विजानीयात्? कस्मै देव्राय हविषा विधेम?[1] केनेषितं पतति प्रेषितं मनः? केन प्राणः प्रथमः प्रेति युक्तः? चक्षुः श्रोत्रं क उदेवो युनक्ति[2]? किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवामः? केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः? अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्।''[3] भगवन्! कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्शरीरे आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रतिष्ठते? केनोत्क्रमते कथं ब्राह्यामभिधत्ते कथमध्यात्ममिति।''[4]

अर्थात् किस देवता को हम हविर्दान करें? यह मन किसके द्वारा इच्छित और प्रेरित होकर अपने विषयों में गिरता है? किससे प्रयुक्त होकर प्रथम (प्रधान) प्राण चलता है? प्राणी किसके द्वारा इच्छा की हुई यह वाणी बोलते हैं? और कौन देव चक्षु तथा श्रोत्र को प्रेरित करता है? जगत् का कारणभूत ब्रह्म कैसा है हम किसके द्वारा जीवित रहते हैं? कहां स्थित हैं? और हे ब्रह्मविद्गण! हम किसके द्वारा सुख-दुःख में प्रेरित होकर व्यवस्था (संसार यात्रा) का अनुवर्दान करते हैं?

भगवान्! यह प्राण कहां से उत्पन्न होता है? किस प्रकार इस शरीर में आता है? तथा अपना विभाग करके किस प्रकार स्थित होता है? फिर किस कारण शरीर से उत्क्रमण करता है? और किस तरह बाह्य एवं आभ्यान्तर शरीर को धारण करता है? भारतीय दर्शनशास्त्र इसी जिज्ञासा का परिणाम है निष्पत्ति हैं निगमन है।

'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' के रूप में चाहे वेदान्तियों की जिज्ञासा हो। वह चाहे मीमांसकों की कर्म जिज्ञासा हो या ज्योतिष्कों की काल जिज्ञासा। कार्य से कारण की ओर स्थूल से सूक्ष्म, विचार से विचारातीत, मन से मनसातीत, ज्ञात से अज्ञात भौतिक से अभौतिक इहलोक से परलोक, शब्द

से शब्दातीत बाह्य से आभ्यन्तर एवं विज्ञान से रहस्य की ओर मानव मन की सहज प्रवृत्ति रही है।

जिस प्रकार शैवागम दर्शन में अवस्था भेद से इच्छा, ज्ञान या क्रिया रूप में आत्म प्रकाश करती है, उसी तरह इच्छा के उन्मेष से क्रिया शक्ति के उदय होने पर यह 'आयुर्दाय विचार' शीर्षक लघुनिबन्ध, ज्योतिर्विदों जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत है। सभी शास्त्र, अपने-अपने लक्ष्य तक पहुँचने पहुँचाने में एक दूसरे के सहायक है विरोधी नहीं। ज्योतिर्विज्ञान तो किसी रूप में नहीं यह जीवन ईश्वरीय देन है। अखिल जीवन में निखिलकार्य काल के अधीन है। इसलिए कालज्ञान विदों ने कहा है:-

कालेन सृजते ब्रह्मा कालेन हरते हरः।
कालेन पाति विष्णुश्च तस्मात् कालञ्च चिन्तयेत्।।[5]

अर्थात् निश्चित कालावधि में ब्रह्मा जगत् की सृष्टि रुद्र सहार तथा विष्णु उसका पालन करते हैं।

अपरञ्चः-

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति तस्मात् कालञ्च चिन्तयेत्।।[6]

काल ही प्राणियों को उत्पन्न और संहार करता है। तथा प्राणियों के सोने पर भी जगा रहता है। अतएव काल की चिन्ता (ध्यान) करें।

अन्यच्चः

काले देवास्तथा नागा यक्षाश्चासुरपन्नगाः।[7]
विद्याधरा मनुष्याश्च सर्वेनश्यन्ति कालतः।।

अर्थात् निर्धारितकाल में देव, नाग, यक्ष, असुर, पन्नग, विधाधर और मनुष्य सभी नष्ट हो जाते हैं। अन्यच्चः-

विरञ्चिदिनमध्येतु पनन्तीन्द्राश्चतुर्दश।
सोऽपि चाब्दशतान्तेतु स्वयं कालेन नश्यति।।[8]

अर्थात् जिनके। एकदिन में चतुर्दश इन्द्रों का पतन हो जाता है ऐसा भी ब्रह्मदेव स्वयं निर्धारित काल से नष्ट होते हैं।

एवमेव–

मानुषस्तु शतञ्जीवी पुरावेदेषु भाषितम्।
सोऽपि कालप्रभावेण विनश्यति न संशयः।।[9]

वेदोक्त प्रमाण से मनुष्य को सामान्यतया 100 शतंजीवी माना गया है। वह भी नियत समय पर नाश को प्राप्त करता है।

तथाचः–

वर्षा शीतं तथा चोष्णं प्रत्यूषं मध्यमं दिनम्।
अपराह्नं तथा नक्तं रूपं कालस्य कथ्यते।।[10]

काले फलति तरवः काले बीजं प्ररोहति।
काले पुष्पवती नारी सर्वं काले न जायते।।[11]

अर्थात् वर्षा, शीत, गर्मी, प्रातः काल, मध्याह्न, तथा रात्रि ये काल के ही रूप हैं। समय पर ही वृक्ष में फूल और फल लगते हैं। काल पर ही बीज उत्पन्न होता है। क़ाल में ही स्त्री पुष्पवती (रजोदर्शवती) होती है। एवं यावन्मात्र वस्तु हैं, सब समय पर ही होते हैं।

एवमेव–

कालेऽशनं च तोयं च काले मेघः प्रवर्षति।
काले कर्म समुद्दिष्टं विपरीतं न शोभनम्।।[12]

काल में भोजन-पान होता हे। मेघ वरसता है। तथा जो कार्य समय पर किए जाते हैं वे शुभ कारक है। असमय में कृतकार्य के परिणाम विपरीत होते हैं

यहाँ ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त रूप में जो काल की विशेषताएँ बताई गई हैं। तदनुसार प्राप्त मानव जीवन में शरीर को आत्मा, मन को अन्तरात्मा और प्राणों को परमात्मा कहते हैं वे ही पञ्चतत्वों को धारण करते हैं। जैसा कि कहा गया है:–

आत्मा शरीर मित्युक्तमन्तरात्मा मनो विदुः।
परमात्मा भवेत्प्राणः पञ्चचतत्वानि धारयेत।।[13]

देहरूपी नगर में नस, नाड़ियाँ और इन्द्रिय आदि जो गलियाँ हैं, वे सभी अन्तकाल में शून्य हो जाती हैं अर्थात् इनके स्वाभाविक कार्य बन्द हो जाते हैं। तब प्राणरूप राजा उन गलियों से होकर निकल जाता है। तब यह देह रूप पुर शून्य हो जाता है।

स्वरोदय मत से

कायानगरमध्ये तु मारुतो रक्षपालमकः।
प्रवेशो दशभिः प्रोक्तो द्वादशाङ्गुलनिर्गमः।।[14]

अव स्वरोदय के मत से कालज्ञान को कहते हैं कि इस देहरूप नगर में श्वास रूप पवन ही इसकी रखवाली करता है। उसका 10 दश अंगुल प्रवेश और 12 अंगुल निर्गम कहा गया है। इससे न्यूनाधिक होना अरिष्ट के लक्षण हैं। यथा–

उदयं सूर्यमार्गेण चन्द्रेणास्तमयं यदि।
ददाति गुणसंघातं विपरीतं विनाशकृत।।[15]

अर्थात स्वरोदय यदि सदैव नासिकादक्षिण पुट से हो और वाममार्ग से अस्त हो तो अतीव गुणदायक होते हैं। इसके विपरीत हो अर्थात् वाम स्वर से उदय और दक्षिण स्वर से अस्त हो तो विनाश (मृत्यु) कारक होता है।

अपरञ्चः–

सम्पूर्णं वहते सूर्यः सोमश्चैव न दृश्यते।
पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम्।।[16]

यदि सदैव दक्षिणस्वर चले तथा वामस्वर चले नहीं तो उस प्राणी की 15 दिनों में मृत्यु हो यह कालज्ञान द्वारा कथित है।

अन्यच्चः–

आसन्न मृत्यु के लक्षणों को कालज्ञानी इस रूप में बताते हैं;

यथाः–

मासश्चैवतु षणमासः पक्षश्चैव त्रिमासकः।
पञ्चरात्रिर्वहेच्चैकस्तस्य मृत्युर्न संशयः।।[17]

जिस प्राणीका एक ही स्वर एक महीना या छः महीने या एक पक्ष तथा तीन महीने या पाँच रात बराबर चले उसकी निःसन्देह मृत्यु होती है।

आसन्न मृत्यु के उपर्युक्त लक्षणों का ज्ञान काल ज्ञानियों को ही होता है–यह जानना चाहिए।

कुछ अन्य लक्षण यथाः–

> **अरुन्धतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च।**
> **आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम्।।[18]**

अर्थात् अरुन्धती, ध्रुव और विष्णु के त्रिपद (श्रवण नक्षत्र के तीन तारे) एवं चतुर्थ मातृ मण्डल (कृतिका के छः तारे) इन्हें हीनायु मनुष्य नहीं देख पाते। इस प्रकार काल के कार्य और आयु विषयक कुछ विचार प्रस्तुत कर अब ज्योर्तिविज्ञान के आधार पर आयुर्दायविचार विषयक चर्चा करने जा रहा हूँ।

ज्योतिर्विज्ञान क्या है?

वस्तुतः ज्योतिर्विज्ञान कालविधानशास्त्र या काल विज्ञान है। निर्धारित कालखण्डों में ही वैशेषिकदर्शनानुसार द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय और अभाव इन सात पदार्थों में अभाव पदार्थ को छोड़कर सभी छः भावपदार्थों को द्रव्याश्रित माना गया है।

द्रव्य नौ हैं। यथा पृथिवी जल-तेज-वायु-आकाश-दिशा-काल-आत्मा और मन। मन 11वाँ इन्द्रिय है तथा पाँच ज्ञानेद्रिय तथा पाँच कर्मेन्द्रिय हैं। इन 10 इन्द्रियों के साथ मन का सम्बन्ध होने से जीव विषयभोग करता है। यही संचित प्रारब्ध और क्रियमाण कर्म में परिवर्तित होकर प्राणियों को पृथक्-पृथक रूप में जन्मान्तर में पुनः विषय योग में प्रवृत्त करता है।

हम पूर्व जन्म को मानते हैं तथा घटित, घट रही और घटने वाली घटनाओं को भूत, वर्तमान और भविष्य, इन त्रिविधकाल खण्डों में बाँट कर उनके परिणामों को जानने का एक सफल प्रयत्न करते हैं।

यहाँ इन तथ्यों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि गुण और क्रिया द्वारा ही पदार्थ तत्वों का ज्ञान होता है। तथा एक ही गुण-क्रिया समस्त चराचरजगत् में अलग-अलग देह और जाति में संभव नहीं है। अतः पृथक्-पृथक् शरीरधारी जीव के अलग-अलग गुण-क्रिया के द्वारा भोगादिकार्य होते हैं।

बौद्धिक अनुभूतियों का समूह जब बुद्धिक्षेत्र में एक नियम बनाता है और वह बुद्धि द्वारा ही परिमार्जित होकर सिद्धान्त रूप बन जाता है तो उसे भौतिक अथवा पार्थिव विज्ञान कहते हैं।

इसी प्रकार आध्यात्मिक अनुभूतियाँ ज्ञान काण्ड में एक नियमित मार्ग या प्रक्रिया बनकर ज्ञान द्वारा चरितार्थ हो जाती हैं तो अध्यात्मविज्ञान कहते हैं। क्योंकि विज्ञान के दो भाग हैं–भौतिक तथा आध्यात्मिक। भौतिकी शाखा में नियम और आध्यात्मिक शाखा में उसकी निष्पत्ति तथा यौगिक प्रक्रियाएँ होती हैं। अतः जिस विज्ञान में दोनों शाखाओं का पद-पद पर प्रतिपादन होता है वह पूर्ण विज्ञान है। उक्त दोनों शाखाएँ ज्योतिष शास्त्र में गणित (सिद्धान्त) और फलित रूप में वर्णित हैं। अतः ज्योतिष पूर्ण विज्ञान है।

इसे यों भी कह सकते हैं कि बीज-अंक और रेखा इन उपकरणों के द्वारा पार्थिव और आन्तरिक्ष वस्तुओं के परिमाण, स्थिति और गुण का विवेचन तथा नियमन जहाँ हो वह गणित (सिद्धांत) है। इस गणित की पारिणामिक प्रतिक्रिया या प्रयोग जिस क्षेत्र में हो वह फलित है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भौतिक विज्ञान में समस्त शरीरादि पदार्थों की उपयोगिता और अध्यात्मविज्ञान में अध्यात्म वस्तुओं की विवेचना की जाती है जिस प्रकार सांख्य और योगविज्ञान में एकता है, उसी प्रकार भौतिक और आध्यात्मिक विज्ञान में भी। ज्योतिर्विज्ञान दोनों का समन्वित रूप है।[17] यह धर्म-अर्थ-काम और यश का प्रतिपादक है।[18] इसका निदान वेद है। तथा वेदाङ्गों में यह नेत्र स्वरूप है। इसलिए नेत्र के बिना मनुष्य अकिञ्चित् कर माना गया है। अदृष्ट को दृष्टकरने वाला अनादि अनन्त काल की आत्मा सूर्य और मन चन्द्रमा कारण तथा कार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस पूर्ण विज्ञान के साक्षी हैं।

आयुर्दाय ''महर्षिपराशरमतानुसार

इस निबन्ध में आयुर्दायसम्बन्धी जितने विचार आपके समक्ष प्रस्तुत है वे सभी महर्षि पराशर ने ब्रह्मा से प्राप्त ज्ञान के अनुसार हमें बताए हैं। प्रसङ्गानुसार कुछ विचार अन्यतः यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं। यथा- आयुर्दाय शब्द से हम क्या बोध करते हैं?

आयु–जीवितकाल, प्राण, नित्यग, अनुबन्ध इन पर्यायों के द्वारा ज़ानकर जन्म से मृत्यु पर्यन्त काल को हम आयु कहते हैं। दाय शब्द विशेषरूप से पितृपरम्परा से संचित धन प्राप्त करने योग्य अधिकारी के लिए प्रयुक्त होता है। यौतुक आदि देय धन, कन्या दान के अनन्तर वर या वर के पिता को दिया जाने वाला धन, पैतृक धन, पिता के धन का भाग, वैवाहिक धन, वपौती, विपत्ति आपद आदि का ज्ञापक है। अतः इस आयुर्दाय शब्द का अर्थ हुआ प्राणी इसका विशेष अर्थ यह हुआ कि हमें अपने पूर्व जन्मार्जित संचित कर्मफल भोगने के लिए जन्म से मृत्यु पर्यन्त काल रूपी धन जितना प्राप्त हुआ है–वह पृथक् पृथक् सब के लिए सुखपूर्वक या दुःख पूर्वक भोगना ही है यह पितृपरम्परा से प्राप्त भौतिक धन है। क्योंकि हम अपने पिता के आत्मज कहलाते हैं। उनकी ही आत्मा हम में है। तथा यह पाञ्चभौतिकशरीर पञ्चमहाभूतों के द्वारा ही पालित पोषित है। यह हमारा पितृधन है। इसके हम भोगी हैं। यह विधि सम्मत है।

महर्षि पराशरने सर्व प्रथम आयुर्दाय विचार वर्णद दशा के रूप में किया है। उनका कहना है कि इसके ज्ञान से आयुर्दाय के फल कहे जाते हैं।

यदि विषम लग्न में जन्म हो तो मेष से क्रम से जन्म लग्न पर्यन्त तथा सम लग्न में जन्म हो तो मीन से जन्म लग्न पर्यन्त गिने! इसी प्रकार होरा लग्न कुंडली में गणना करें। इस प्रकार दोनों संख्या विषम हो अथवा संख्या सम हो दोनों को जोड़े। यदि एक की संख्या सम तथा एक विषम तो दोनों का अन्तर करें। इस प्रकार योग अन्तर करने के बाद यदि संख्या विषम हो तो

मेषादि क्रम से यदि सम हो तो मीनादि उत्क्रम प्रकार से गणना करने पर जो राशि हो वही लग्न राशि का वर्णद कहलाता है।

यथा–

> वर्णदाख्य दशां मानां कथयाम्यत्रतेऽग्रतः।[21]
> यस्य विज्ञानमात्रेण वदेदायुर्म वं फलम्।।

जिसके ज्ञान से आयुर्दाय के फल कहे जाते हैं। इसका प्रयोजन बताते हुए महर्षि पराशर ने मैत्रेय से कहा –"जन्म लग्न और होरा लग्न इन दोनों में जो बली हो उस राशि क्रम से (विषम में क्रम गणना तथा सम में उत्क्रम गणना) क्रम उत्क्रम गणना कर वर्णद दशा का ज्ञान होता है। लग्न से वर्णद जितनी संख्या पर हो उतने वर्ष लग्न ही दशा, एवं प्रतिभाव के वर्णद से प्रत्येक भाव के दशावर्ष समझना चाहिए।

यथा–

> ओजलग्नप्रसूतानां मेषादेर्गणयेत्क्रमात्।
> समलग्नप्रसूतानां मीनादेरपसव्यतः।।
>
> मेषमीनादितो जन्मलग्नान्तं गणयेत्सुधीः।
> तथैव होरा लग्नान्तं गणयित्वा ततः परम्।।
>
> ओजत्वेन समत्वेन सजातीये उभे यदि।
> तर्हि संख्ये योजयीत वैजात्ये तु वियोजयेत्।।
>
> मेषमीनादितः पश्चाद्यो राशिः स तु वर्णदः।[22]

यदि लग्न के वर्णद से त्रिकोण स्थान में पापग्रह की दृष्टि अथवा योग हो तो उस राशि की दशा पर्यन्त जातक का जीवन समझना चाहिए। जिस प्रकार रुद्र ग्रह की शूलदशा में जीवन मरण का विचार होता है उसी प्रकार वर्णद के त्रिकोण में पापादि योग से समझना चाहिए। वर्णद के सप्तम में स्त्री का जीवन एवं एकादश से बड़े भाई का तृतीय से छोटे भाई का पञ्चम से पुत्र चतुर्थ से माता का और नवम से पिता क मरण जीवन विचार करना चाहिए अर्थात् इन स्थानों पर पाप ग्रह की दृष्टि और योग हो तो तत्त स्थानोक्त सम्बद्धजनो की जीवन हानि हाती है।[23]

किस भाव से क्या-क्या विचार करना चाहिए इस क्रम में महर्षि पराशर ने कहा है शनि से अष्टम भाव से मृत्यु आयु आदि विचार करना चाहिए। यथाः–

"अष्टमस्य व्ययस्यापि मन्दानमृत्यौ व्यये तथा"

अरिष्टाध्याय

महर्षि पराशर के कथनानुसार प्रथम जन्म लग्न से जातक का अरिष्ट और अरिष्ट भङ्ग योगों का विचार कर फिर तनु धन आदि भावों का फलादेश करना चाहिए।

यथा–

आदौ जन्माङ्गतो विप्र रिष्टाऽरिष्टं विचारयेत्।
ततस्तन्वादिभावानां जातकस्य फलं वदेत्।।

क्योंकि जन्म से 24 वर्ष पर्यन्त बालारिष्ट रहता है, इसलिए जब तक आयुर्दाय का निश्चय नहीं करना चाहिए।

चतुर्विंशति वर्षाणि यावद् गच्छन्ति जन्मतः।
जन्मारिष्टं तु तावत्स्याद् आयुर्दायं न चिन्तयेत्।।

यथा–लग्न से 6, 8, 12 वें स्थान में चन्द्रमा यदि पापग्रहों से देखा जाता हो तो जातक का शीघ्र मरण हो जाता है। यदि उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो 8वें वर्ष में उसका मरण होता है। शुभ ग्रह भी लग्न से 6, 8, 12 वें भाव में वक्री हो तथा पापग्रहों से दृष्ट हो। तो मास में मरण होता है। यदि लग्नस्थ शुभग्रह हो तो ऐसा नहीं होता। यदि लग्न अथवा अष्टम स्थान में मंगल ग्रह हो तो ऐसा नहीं होता। यदि लग्न अथवा अष्टम स्थान में मंगल पाप ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हो और शुभ ग्रह से अदृष्ट हो तो जातक का मरण होता है। यह कब किस आयुकाल में होगा नहीं कहा गया है किन्तु यह अरिष्ट योग कारक है तो 24 वर्ष के अन्तर्गत ही होगा ऐसा समझना चाहिए। इस प्रकार कई अन्य अरिष्टकारक के योग हैं इनसे भी आयुर्दाय का विचार करना चाहिए। ज्ञातव्य है कि आयुर्वेद में चिकित्सक मरणासन्न रोगी के प्रतिकूल लक्षणों को देखकर उसकी मृत्यु का अनुमान कर लेते हैं। रोगी के स्वास्थ्य प्रतिकूल लक्षण ही उसके अरिष्ट माने गए हैं।

भावस्थ ग्रहों के द्वारा आयुर्ज्ञान

लग्नेश, बुध, गुरु, अथवा शुक्र केन्द्र त्रिकोण में हो तो जातक दीर्घायु, धनी, बुद्धिमान् और राज प्रिय होता है।

1. लग्नेशो–ज्ञो–गुरुर्वाऽपि शुक्रो वा केन्द्र कोणगः।
   दीर्घायुर्धनवान जातो बुद्धिमान् राजवल्लभः।।[26]
2. अष्टमेश यदि केन्द्र में हो तो जातक दीर्घायु होता है।
   आयुः स्थानाधिपः केन्द्रे दीर्घमायुः प्रयच्छति।।[27]
3. अष्टमेश यदि पाप ग्रहों के साथ अष्टमभाव में ही स्थित हो तो जातक अल्पायु होता है यदि लग्नेश भी वहीं हो।[28] जैसे अष्टमेश की स्थिति से आयुविचार किया

जाता है उसी प्रकार शनि तथा दशमेश से भी विचार करना चाहिए।

4. षष्ठेश अथवा द्वादशेश यदि 6, 12 भावों में अथवा लग्न में हो तो दीर्घायुकारक होते हैं।

5. पञ्चमेश, लग्नेश ओर अष्टमेश अपनी-अपनी राशि अथवा नवांश में हो या मित्र की राशि में हो तो जातक दीर्घायु होता है। किन्तु इन चारों में जो बलवान हो उसकी स्थिति से ही आयुदाय का निर्णय करना चाहिए।

अल्पायुयोग

अष्टमेश केन्द्र में तथा लग्नेश निर्बल हो तो 20 वर्ष से 32 वर्ष पर्यन्त आयु होती है।

अष्टमेश नीच में और अष्टम भाव में पापग्रह हो, लग्नेश निर्बल हो तो जातक अल्पायु होता है।

अष्टमेश और अष्टम भाव पाप ग्रह के साथ हो तथा 12वें भाव में पाप ग्रह हो तो जन्म होते ही मृत्यु होती है।

केन्द्र त्रिकोण में पाप ग्रह तथा 6, 8 में शुभग्रह हो, लग्न में नीच राशि का अष्टमेश हो तो शीघ्र मृत्यु होती है। पञ्चम भाव, पञ्चमेश और अष्टम भाव पापग्रह से युक्त हो तो जातक अल्पायु होता है।

अष्टमेश अष्टम भाव में और चन्द्रमा पापग्रह से युक्त हो उस पर किसी शुभ ग्रह की दृष्टि नहीं हो तो जातक का एक मास में मरण होता है।[29]

दीर्घायु विशेष योग

लग्नेशे स्वोच्चराशिस्थे चन्द्रे लाभसमन्विते।
रन्ध्रस्थानगते जीवे दीर्घमायुर्नसंशयः॥

लग्नेशोऽतिवली दृष्टः केन्द्र संस्थैः शुभग्रहैः।
धनैः सर्वगुणैः सार्धं दीर्घमायुः प्रयच्छति॥[30]

अर्थात् लग्नेश उच्च में, चन्द्रमा 11वें भाव में और गुरु अष्टम भाव में हो तो जातक निःसन्देह दीर्घायु होता है। यदि लग्नेश बली होकर केन्द्र स्थित शुभग्रह से दृष्ट हो तो धन और सब गुणों से युक्त और दीर्घायु होता है।

सारांश—आयुर्दाय विचार के लिए फलितज्योतिष शास्त्र में अनेक विधियाँ हैं। विभिन्न आचार्यों के मत से आयुर्दाय साधन में एकरूपता नहीं है तथा हीनायु, स्वल्पायु मध्ययायु अमितायु ज्ञात करने के लिए जो प्रक्रिया हैं वे अपने आप में पूर्ण नहीं है। क्योंकि आयुर्दाय साधन करने

पर जो परिणाम प्राप्त होते हैं उनमें बहुत अन्तर है। अतः परस्पर ह्रास वृद्धि करते हुए गणितक्रिया के द्वारा प्राप्त परिणाम भी शुद्ध-शुद्ध प्राप्त नहीं होते। इस दृष्टि से पराशर बहुत स्पष्ट है।

हित-मित्र आहार विहार, सद्वृत्ति सदाचार, सत्य अहिंसा-अस्तेय, आदि धर्मचार पूर्वक जीने वाला पुरुषार्थी धर्म-अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त करता है। शतं जीवी होता है। वेदभगवान् ने हमें उपदेश दिया है जिसका निरन्तर पालन करने पर हमें 100 वर्ष जीने का अधिकार है। शतं जीवेम शरदः शतम् श्रृणुयाम शरदः शतम्। इति शिवम्।

---

1. यजुवेर्द अ. 13
2. केनोपनिषद् मं 1, खण्ड 1, मं 1
3. श्वेताश्वतरोपनिषद् अ. 1, मं 1,
4. प्रश्नोपनिषद् तृ. प्र. खं 1 मन्त्र 1।

5-7. कालज्ञान, प्रकाश खेमराज श्रीकृष्ण दास प्रकाशन मुम्बई 4

8-13. कालज्ञान

14-18 कालज्ञान खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन मुम्बई 4

19. ज्योतिदर्शन
20. सि. शि. गणिताध्याय

21-22. बृ. पा. हो. शा. वर्णददशाध्याय 1-6

23. बृ पा. होशा वर्णददशाध्याय 7.14
24. वहीं भाववर्ग विवेकाध्याय श्लो 42
25. बृ. पा. हो. शा. अरिष्टाध्याय श्लो 1-23
26. बृ. पा. हो. शा. तनु भा. फला अध्याय श्लो 1।
27. बृ. पा. हो. शा. अष्टम भावफलध्याय श्लो।
28. वही
29. बृ पा. हो शा. आयुर्भावाध्याय।
30. वही

कर्णरोगविमर्शः

डॉ. नागेन्द्र पाण्डेयः

भारतीयज्योतिषशास्त्रे प्राणिनां सुखदुःखादिनां शुभाशुभकर्मद्वारा प्राप्तव्यानां शुभाशुभफलानां सम्पूर्ण विचारो कृतो दृश्यते। एतेषां फलानां विवेचनं त्रिधा क्रियते दैवचिन्तकैः शास्त्रकारैः। प्रथमं जन्मकालिकैर्द्वादिशभावस्थितैर्ग्रहैस्तथा द्वितीय जन्मराशिवशेन तेषां स्थित्या एवञ्च तृतीयं जन्मनक्षत्रद्वारा प्राप्तव्यानां सुखदुःखानां विचारो भवति।

कस्यापि जनुष अश्विन्यादि सप्तविंशति नक्षत्रेषु प्रादुर्भावो भवति। सप्तविंशतिनक्षत्रेषु सर्वेषां नामानि तेषामाकृत्यानुसारं प्रकृत्यानुरूपं च प्रकल्पितानि ज्योतिर्तत्ववविद्भिर्भहर्षिभिः। अत्रकर्णस्य पर्यायभूतं श्रवणनक्षत्रं स्वाभिधानानुरूपं श्रवणेन्द्रियस्य प्रतिनिध्यं करोति।

श्रवणनक्षत्रमश्विन्यादितः द्वाविंशतिक्रमेषु आयाति। तस्य स्वामिर्भवति विष्णुः। इदं चर नक्षत्रं तथास्य सहयोगीग्रहो विहाते चन्द्रः। इदंमूर्ध्वमुखनक्षत्रेषु विगण्यते। कर्णस्थानस्य ऊर्ध्वभागे उत्तमाङ्गे च स्थानं भवति, अतएव अस्याधिपतेर्देवस्य विष्णो उच्चस्थाने स्थितिः समीचीना एव। श्रवणनक्षत्रस्य तिस्रस्तारा: सन्ति। याः श्रोत्रद्वयस्य मनसश्चैकस्य नियन्त्रणं कुर्वन्ति। जन्मकाले यदा श्रवणनक्षत्रं शुभग्रहाधिष्ठितं, शुभावलोकितं शुभांशसहितञ्च भवति तदा जातकस्य श्रवणेन्द्रियजन्यसुखमाजीवनं भवति; कदापि तस्य

श्रवणवैकल्पं नोत्पद्यते। श्रवणनक्षत्रस्य भोगमानं यद् भवति तत्र दश 10 घटिकात आरभ्य घटीचतुष्टयं यावत् विषघटी भवति। दौर्भम्याद् यदि श्रवणनक्षत्रस्य विषघट्यास्तर्गते एव यदि कस्यापि जातकस्य जन्म भवति, तदा सः जन्मकालादेव श्रोत्रदोषयुक्तो बधिरो वा सञ्जायते।

जन्माङ्गचक्रद्वारा विषयेऽस्मिन् प्रायः सर्व ग्रन्थकाः तृतीयभावेन कर्णरोगस्य विचारं कृतवन्तो दृश्यन्ते। यथात्र आचार्यो वराहमिहिरो बृहज्जातके विचारितवान्–

नवमायतृतीयधीयुता न च सौम्यैरशुभा निरीक्षिताः।
नियमाच्छ्रवणोपघातदा रदवैकृत्यकराश्च सप्तमे।।[1]

एवमात्र संसूचितं यत् जन्मकाले 3, 5, 8, 11 एतेषु भावेषु पापग्रहाः भवन्ति, शुभग्रहाश्च नावलोकयन्ते तदा श्रवणव्रणः श्रवणाघातः, श्रवणविकलता वा उत्पद्यते। एवमेव कल्याणवर्माविरचितायां सारावल्यां कर्णरोगस्यविचारो विस्तृतरूपेण प्राप्यते। तद्यथा–

एकादेशे तृतीये होरायां पासंयुते शशिनि।
कर्णविकलो नरः स्यात्पायगहवीक्षिते सहाः॥

नवमे पञ्चमाराशौ पापग्रहवीक्षितौ ग्रहौ स्याताम्।
श्रोतोपधातमतुलं कुर्यातां जातमाप्रस्य॥

नवमे दक्षिणकर्णं वामं वै पञ्चमे गृहो हन्यात्।
अत्रैव सौम्यभे वा शुभदृष्टे वा शुभं वाच्यम्॥

राशौ होरात्तरं प्राप्य यो यस्मिन् व्याधिमाप्नुयात्।
तच्चास्य होराप्रसवे चन्द्रस्थानं च यद्भवेत्॥

सव्यापसव्यभागे योगमथैव ग्रहास्तु संप्राप्ताः।
कुर्युर्नृणां च चिह्नं व्यङ्गभयं पापबीक्षिताः सौम्याः॥

विदित्वा त्रितयं ह्येतत् कृत्स्नस्य तु विशेषतः।
शुभाशुभौ तु विज्ञेयौ ग्रहसंयोगकारणौ॥[2]

अत्र सारावली पदृत्या कर्णरोगविचार एवं क्रमेण ज्ञातं भवति–

(1) पापग्रहयुतश्चन्द्रः 1, 3, 11 एष्वन्यतमेषु भवेत् तदा सद्यः कर्णरोगोत्पद्यते।

(2) यदि नवमे पञ्चमे वा भावे पापग्रह अथवा पापग्रहैर्दृष्टो वा ग्रहः स्यात् तदा कर्णरोगो जायते। अत्र नवमभावः पापग्रस्तः पापावलोकितो वा भवेत् तदा तु दक्षिणकर्णे आधातो भवति तथा यदि पञ्चमभावः पापग्रहैर्युतो दृष्टो वा भवति तदा वामकर्णस्य आघातो ज्ञातव्यः।

(3) रोगारम्भकाले यस्मिन् राशौ चन्द्रः भवति तमेव रोगलग्नं परिकल्प्य रोगस्य विचारो कर्तव्यः।

केतुरपि कर्णरोगस्य कारको भवति। यदा केतु तृतीयभावे गतः स्यात् तदा तस्य स्थित्यानुसारं कर्णरोगस्य विवेचनं करणीयम्। तद्यथोक्तम्–

कण्डूयसूरिरिपुकृत्रिमकर्णरोगैः साचारहीनलघुणातिगणैश्च केतुः॥

अनेनात्र ज्ञायते यत् कर्णकण्डुः, कर्णवातः, कर्णश्लेष्मा च केतु दोष देव सम्भवति।

उत्तरकालामृते भावानां विषयनिरूपणं कुर्वन् कालिदासो लिखति, यत् तृतीय भावेन कर्णरोगस्य विचारो कर्तव्यः। यथा च तदुक्तिः–

धैर्यंसोदरयुद्वकर्ण–चरणाध्वक्षेत्रचित्तभ्रमाः। सामर्थ्यसुरसद्मतापकरणं स्वप्नं भटो विक्रमः। स्वीयो बन्धुजनः सुहृच्चलनकण्ठादुष्टभोज्यादिकं शक्तिदीय विभागभूषणगुणा विद्याविनोदौ बलम्॥

उत्तरकालामृते कारकत्वखण्डे 5/4 होरारत्ने मिश्रबलभद्रेण षष्ठाध्याये कर्णरोग विषये बहुसम्यक्तया विवेचनं कृतम्। यथा–

सौम्ये रिपौ कुजगृहे शशिना तुरीयदृष्टे रिपौ समदृशा बधिरत्वयोगः।
चापस्थवक्रशनि हृद्दगवाक्पतौ ज्ञे शुक्रन्विते रिपुयुतेन्दुजपूर्ण दृष्टे॥

नक्तं बुधे रिपुगृहे सिते च व्योम्नि संस्थिते।
उच्चैः स्वरेण श्रृणुते श्रवणे दक्षिणोत्तरे॥

त्रिकोणाय तृतीयस्थाः पापाः सौम्यैरवीक्षिताः।
कर्णोपघातं कुर्वन्ति जातकस्य न संशयः॥

नवमे दक्षिणकर्णं वामं वा पञ्चमे हन्यात्।
अत्रैव सौम्ययोगे शुभदृष्टे वा शुभं वाच्यम्॥[3]

एवमत्र कर्णरोगविषयकयोगा एवं क्रमेण विज्ञाताः भवन्ति–

(1) बुधः षष्ठपतिश्चतुर्थे, शनिना चतुर्थदृष्ट्या बधिरो भवति।

(2) बुधो रिपौ यदि शनिना समदृष्ट्या दृष्टे बधिरः।

(3) धनुस्थो वक्री शनिस्तस्य दृष्टायां वाक्पतिर्भवतिज्ञे शुक्रन्विते रिपूगते षष्ठगते भौमेन पूर्णदृष्ट्या दृष्टे बधिरः स्यात्।

(4) रात्रिजन्मनि बुधे षष्ठे, शुक्रे दशमस्थे, उच्चैः शब्देन वामकर्णे शृणोति।

आचार्यो दुण्ढिराजः स्वकीये जातकाभरणे कर्णरोगस्य विचारेवं प्रकारेण कृतवान्, यत् 3, 5, 11 भावेषु पापग्रहाः शुभदृष्टिरहिताः स्युस्तदा बधिरत्वमापतति। यदि च सप्तमभावे पापग्रहाः सौम्यदृष्टि विरहिताः भवन्ति तदा कर्णहातमुत्पद्यते। यथा–

पापास्त्रिपुत्रायगता भवन्ति विलोकिताः नैव शुकैर्नभोगैः।
कुर्वन्ति ते कर्णविनाशनं च जामित्रयाः खलु कर्णघातम्॥[4]

सुप्रसिद्धग्रन्थस्य जातकपरिजातस्य रचयिता दैवज्ञवैद्यनाथः कर्णरोगस्य विवेचनमेवं कृतवानस्ति–

पापे तृतीये गलरोगमत्र वदन्ति मान्द्यादियुते विशेषात्।
भौमान्विते प्रेतपुरीशसूनौ तृतीयराशौ यदि कर्णरोगम्॥

पापेक्षिते सोदरभे सपापे कर्णोद्भवं रोगमुपैति जातः।
क्रूरादिषष्ट्यंशयुते तदोशे कर्णस्य रोगं कथयन्ति तज्ज्ञाः॥[5]

अत्रायमाशयः यदि तृतीयभावे भौमेनयुक्तो गुलिको भवेत् तदा कर्णरोगोत्पघते। यदि च तृतीय भावः पाप ग्रहयुतो दृष्टश्च भवेत् तदा कर्णरोगों वाच्यः। यदि च तृतीय भावाधिपतिः क्रूरादिषष्ठयंशयुतः स्यात् तदापि बधिरत्वमार्या।

एवमत्र निबन्धे कर्णरोगस्य विषये विविधानां प्रमुखाचार्याणां मतानि मयोपस्थापितानि। सारांशरूपेणात्र अवगन्तव्यं यत् प्रामुख्येन तृतीयभाव एव कर्णरोगस्य कारको भवति। तत्र तृतीयभावाधिपतेः स्थित्या तृतीयभावस्य ग्रहैस्तथा च तस्योपरि दृष्टिभिश्च कर्णविषयको विचारो कर्तव्यः इत्थमपि दृश्यते यत् लग्नं तृतीयः पञ्चम-नवमः एकादशश्च भावाः कर्णरोगाणां निर्धारणे सहायका भवन्ति। श्रवणनक्षत्रवशेनं यन्मया विचारोपस्थापितः तदपि सुधीभिर्भृशं विचारणीयमिति दिक्।

---

1. बृ.जा. 23/11
2. सारा 10/68-73
3. होरारत्ने 6/106
4. जातकाभरणे पृष्ठे 68/34
5. जातकपरिजाते 6/66-67

मानसिक रोग

डॉ. नरोत्तमदत्तशर्मा

यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे यह सिद्धान्त प्राचीन काल से प्रचलित है। सौरजगत में सूर्य चन्द्र भौमादि ग्रहों की गतिविधियों एवं क्रिया कलापों में जो नियम काम करते हैं वही नियम हमारे शरीर में स्थित सौरजगत् की इकाई का संचालन करते हैं।

सर्वप्रथम हमें विश्वास करना कठिन हो सकता है कि हमारे और ग्रहनक्षत्रों के मध्य कोई सीधा सम्पर्क या आदान प्रदान है। परन्तु हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि विद्युत एव ब्रह्माण्ड रश्मियों द्वारा हमारा सौर जगत् में स्थित ग्रह पिण्डों से सीधा सम्पर्क है। जिनकी रासायनिक बनावट सतत परिवर्तित होती हुई इस पर निरन्तर और अविचिछन्न प्रभाव डाल रही है।

प्राचीन भारतीय महर्षियों को ब्रह्माण्ड और उसके वासियों के मध्य सतत् एवं सहज सम्बन्ध मान्यता निर्विवाद है। इन्हीं महर्षियों ने ही ज्यौतिष एवं योग शास्त्र के सिद्धान्तों का प्रणयन किया। इस प्रसंग में जलवायु के परिवर्तन को साक्ष्य के रूप में रखा जा सकता है। जलवायु का परिवर्तन एवं सौर परिवारीय ग्रहों की राशि विशेष में गति अथवा हमसे निकट या दूर में स्थिति के कारण होता है। ग्रीष्म ऋतु में वृष मिथुन राशि में स्थित सूर्य की रश्मियों में प्रचण्डता तथा हेमन्त में वृश्चिक, धनु राशि में स्थित सूर्य की किरणों में मृदुता का कारण पृथ्वी एवं सूर्य का सामीप्य एवं दूरत्वभाव है। जलवायु में जो परिवर्तन होता है, इस परिवर्तन का मानवजीवन पर प्रभाव पड़ता है 'प्रकारान्तर से यह सौर परिवार या ग्रहों का ही प्रभाव है।

मनुष्य शारीरिक विन्यास एवं उसकी चित्तवृतियों का यदि कोई ऐसा कारक है, जो उसे कर्मण्यता, आलस्य सबलता या दौर्बल्य एवं प्रखरता एवं मन्दता की ओर ले जाता है तो वह जलवायु ही है। मनुष्य की शारीरिक एवं बौद्धिक शक्तियों में बढ़ौत्तरी और न्यूनता का कारण यह है कि शरद्ऋतु में वायु दाब धीरे धीरे बढ़ता है जिससे मानव की शारीरिक या बौद्धिक क्रियाशीलताअत्यधिक बढ़ जाती है। ग्रीष्म ऋतु में वायुदाव निम्नतम विन्दु पर होता है तो यह क्रियाशीलता भी न्यूनतम हो जाती है।

आज के वैज्ञानिक प्राणियों पर ग्रहों के प्रभाव में विश्वास करें या न करें किन्तु इस बात से आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सकते कि समुद्र की समतलता में वायुमण्डल के दबाव में ऋतुओं के परिवर्त्तन में तथा भूकम्पादि की आवृत्तियों में जो घटनाक्रम दिखलाई दे रहा है उसका

सूर्य एवं चन्द्र आदि की गति स्थिति के साथ सीधा सम्बन्ध है। जब सूर्य एवं चन्द्रर्मा अमावस्या को पास-पास होते है अथवा एकेतर से ठीक विपरीत दिशा में होते है जैसा कि पूर्णिमा को। उस समय अपने आकर्षण-विकर्षण द्वारा समुद्र की समतलता में वायुमण्डल में तथा भूमि के सन्तुलन में एक विलक्षण संक्षोप उत्पन्न कर देते हैं। जिसके कारण ज्वारभाटा, तूफान तथा भूकम्प आते है।

पूर्व पश्चिम अथवा उत्तर दक्षिण के लोगों की जीवन शक्ति में भी अन्तर पाया जाता है। वह खान-पान में भेद या जाति अथवा संस्कृति के भेद के कारण नहीं अपितु जलवायु में परिवर्तन के कारण है। जलवायु की दशाओं तथा इसके परिवर्तनों का मनुष्य के परिवर्धन जीवन शक्ति, जीवन क्षमता अपराधवृत्ति समृद्धि स्वास्थ्य एवं सिद्धि आदि पर सीधा प्रभाव पड़ता है। क्योंकि जलवायु में यह परिवर्तन ग्रहों की गति स्थिति पर आधारित हैं।

ऋषियों के पास एक बहुत सूक्ष्म विश्वसनीय एवं व्यापक साधन योग था। जिसके द्वारा वे ग्रहों के प्रभाव का सूक्ष्म निरीक्षण करते थे। इसी की शक्ति से व सूक्ष्म मापक एवं दूरवीक्षक यन्त्रों के बिना ही इस विश्व या ब्रह्माण्ड के बारे में सब बातें जान सकते थे, उन्हें माप तौल सकते थे और उनका वर्गीकरण कर सकते थे। उन्होंने योगसाधना से अपनी इन्द्रियों की शक्ति को भीतर इतना प्रचण्ड बना दिया था जिससे वे काल के उन अल्पतम क्षणों को तथा स्थल के उन सूक्ष्मतम मार्गो को भी जान सकते थे। अपनी इसी विशेषता के कारण वे काल की अकल्पनीय अवधियों सभी लोक लोकान्तरों को जान लेते थे। जिन्हें बड़े से बड़ा दूरवीक्षक यन्त्र भी हमारी दृष्टि में नहीं ला सकता है।

सैकड़ों वर्षों तक निरन्तर चलने वाले निरीक्षणों ने ऋषियों को इस प्रकार समाहित कर दिया कि विभिन्न राशियों में अलग-अलग ग्रहों के होने पर जन्म से व्यक्ति पर विशेष प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक विलक्षणताएँ होती हैं।

ऋतुओं एवं जलवायु के परिवर्तन वायु मण्डलीय दबाव भूकम्प तथा ज्वारभाटों की प्रक्रियाओं से सूर्य तथा चन्द्रमा की कलाओं का सीधा सम्बन्ध है। पानी का एक एक बिन्दु अनुकी से उसी तरह प्रभावित होता है जैसे ज्वार भाटा की लहरें उसकं इशारे पर उठती बैठती है। चन्द्र हमारा पड़ोसी ग्रह है। अतः हमारे उपर जो ग्रहों का खिंचाव पड रहा है उसमें सबसे ज्यादा मात्रा चन्द्रमा की ही है सूर्य पिण्ड विशाल होने के कारण भी चन्द्रमा की तुलना में अत्यधिक दूरी के कारण उतना खिंचाव नहीं डाल पाता। इस खिंचाव सं हमारा शरीर एवं मन असामान्य हो जाता है। इस असामान्यता के कारण ही अन्य अवसरों की अपेक्षा पूर्णिमा को उन्माद, मिरगी जैसे मानसिक रोग तथा रक्तचाप, रक्तविकार एवं नाड़ीरोग जैसे शारीरिक रोग अपनी चरम सीमा पर होते हैं। शरीर एवं मन में उत्पन्न विकारों के कारण जो दुःख हमें प्राप्त होता है। वह रोग है "रुज रोगे" धातु सं घञ् प्रत्यय, कुत्व तभी उपधिगुण से रोग शब्द की निष्पत्ति बताई गई है। रोग का सामान्य अर्थ है रूकना रूकावट विकारादि। जब इस शरीर रूपी मशीनरी में कोई रूकावट। खराबी आ जाती

है तब इस रूकावट या खराबी को रोग नाम से जाना जाता है। वह चाहे शारीरिक रोग हो मानसिक रोग हो।

भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा अमर है। यह कर्मो के अनादि प्रवाह के कारण अनेकानेक योनियों में बदलता रहता है। प्राणीमात्र के शरीर में रहने वाला यह तत्त्व नित्य है, चैतन्य है, केवल बन्धन के कारण परतन्त्र एवं विनाशी दिखाई देता है। वैदिक दर्शनों में कर्म के संचित प्रारब्ध तथा क्रियमाण तीन भेद कहे गए हैं। इन्हीं त्रिविध कर्मो के परिणाम स्वरूप हमारे शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। वंशानुक्रम से होने वाले रोग संचितकर्मों का परिणाम हेतु था जानबूझ कर सम्पादित दुष्कर्मो द्वारा उत्पन्न रोग क्रियमाण कर्मो का परिणाम है। फलित शास्त्र में संचित कर्म के फल विचार आधान कुण्डली एवं जन्म कुण्डली में बने योगों द्वारा प्रारब्ध के फल का विचार दशाओं द्वारा तथा क्रियमाण के फल का विचार गोचर एवं प्रश्न कुण्डली द्वारा किया जाता है। इसलिए अन्धत्व, काणत्व, मूकत्व, वधि़त्व आदि जन्मजात रोगों का विचार करते समय फलित ज्यौतिष के आचार्यों ने आधान कुण्डली एवं जन्म कुण्डली के योगों को ही महत्त्व दिया है। किन्तु वात पित एवं कफ की विपरीतता से उत्पन्न रोगों तथा अंगों में उत्पन्न होने वाले विकारों का विचार योगों के स्व दशा अन्तर्न्दशा एवं प्रत्यन्तर्दशा आदि की अपेक्षा रखता है। प्रारब्ध संचित का ही एक अंग है तथा क्रियामाण भी संचित एवं प्रारब्ध के मिलाप से उत्पन्न होता है। अतः ऐसे रोगों का विचार करते समय योग एवं दशा के अतिरिक्त तात्कालिक गोचरीय ग्रहस्थिति का भी सूक्ष्मता से अध्ययन करना चाहिए। मिथ्याहार विहार से उत्पन्न रोग क्रियमाण का फल माना जाता है। फलित ज्यौतिष शास्त्र में रोगी का फलादेश करने से पूर्व उसकी आ़यु परीक्षा को प्राथमिकता दी गई है।

पूर्वमायुः परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमादिशेत्।
अनायुषां हि वर्त्यावा लक्षणै किं प्रयोजनम्।। प्रश्नवर्ग

आयुर्वेद में कर्मप्रकोप एवं दोष प्रकोप को रोगोत्पत्ति का प्रमुख कारण बताया है। चरक संहिता उत्तरतन्त्र में अध्याय 40 में लिखा है कि **''कर्मजा व्याधय केचिद् दोषजा सन्ति चापरे।।''**

आचार्य डल्हण ने भी कहते है कि सामान्यतया **''मिथ्याहार विहाराभ्यां रोगा समद्धवन्ति''** इति। किन्तु जब मनुष्य मौसम के अनुसार आहार विहार करता हो सदवृत्ति का सेवन करता हो एवं रोगोत्पत्ति की ऋतु भी न हो और अकस्मात रोगोत्पत्ति हो जाए। तब उस रोग को कर्म जन्य मानना चाहिए। **''ब्रह्मस्त्री सज्जनवधपरस्वहरणादिभिः।'' सुआत सं उत्तरतन्त्र विर्मश 40/63।** आहार विहार भी एक प्रकार का कर्म ही है। जिसके मिथ्या योग से रोग उत्पन्न होते हैं मिथ्या आहार विहार क्रियमाण कर्म है। आयुर्वेद में कर्मजन्य रोगों का कारण जो कर्म माना है वह संचित कर्म है। जिसके एक भाग को प्रारब्ध या दैव कहा गया है। ज्यौतिष शास्त्र के आचार्यों ने पूर्वार्जित अशुभ कर्म या जन्मान्तर में कृत पाप को रोग का कारण कहा है।

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।। प्रश्नभगे 3/2

शातातपीय तन्त्र में तथा वीर सिंहावलोक ग्रन्थ में त्रिशणचार्य ने पूर्वजन्म कृत पापों को रोगोत्पत्ति का कारण स्वीकार किया है।

पूर्वजन्म कृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य कृच्छ्रादिभिः शमः।।

कुठठज्य राजयक्ष्मा च प्रमेहो गहणी तथा।
मूत्रकृच्छ्राश्मसिकासा अतिसाभगन्दसै।। शा. त.

जठर गुद्जोन्मादापस्मृत्यसृगुत्सृतिपंगुता
श्रुति विकलता नाग्वैकल्मप्रमेय भगन्दराः।
प्रदरपवन व्याधि श्वित्रशयक्षणक्षन्धता
तिमिरवदन घ्राणार्शासिश्वयथुविपची व्रणाः।।

इन सभी रोगों में मानसिक रोग में अपना ही महत्त्व है। मानसिक रोग मन एवं मस्तिष्क में विकार के कारण उत्पन्न होते है। फलित ज्यौतिष ग्रन्थों में इनका विशदनिरूपण है। उन्माद, सनक प्रभ्तद अपस्याड जड़ता एवं मतिभ्रम आदि मानसिक रोग किन व्यक्तियों को हो सकते हैं। इनका उपचार (निदान) मनुष्य की जन्म कुण्डली के रोग योगों के आधार पर किया जा सकता है।

उन्माद

मानसिक रोगों में उन्माद विक्षिप्तता प्रमुख रोग है। इस रोग के कारण बुद्धि भ्रमित हो जाती है। शरीरिक एवं मानसिक चेष्टाएं असामान्य बोलचाल असम्बद्ध अधिकांश काम ऊट-पटांग तथा इच्छाएं तीव्रतर हो जाती है

उन्माद के कारण एवं भेद

विषम भोजन अपवित्रभोजन उपवास अथवा वैराग्य अकारण क्रोध शत्रुकृत अभिचार गुरुनिन्दा यज्ञादि कर्मो में त्रुटि एव दैवनिन्दा ये उन्माद के दस कारण है। हर्ष, इच्छा एवं शीक्त के आधिक्य से विरुद्ध एवं अपवित्र भोजन से और गुरु देवता आदि के कोप से उन्माद होता है।

हर्षेच्छाभयशोकार्देर्विरुद्धाशुचि भोजनात्।
गुरुदेवादिकोप्तच्च पञ्चोन्मादा भवन्तयथा। प्रश्न 12/34
विरुद्धदुष्टाशुचि भोजनानि प्रधर्षण देवगुरु द्विजान्तम्।
उन्मादहेतुर्मयहर्षपूर्वा मनोऽभिधातो विषमाश्च चेष्टाः।। च. सं.

वातजन्य, पित्तजन्य, सन्निपात जन्य एवं आगन्तुक (भय, कोप, शाप या अभिचार जन्म) से पांच प्रकार के उन्माद होते हैं।

वातजन्य उन्माद–

हंसना चिल्लाना, रोना, विलखना गाना नाचना एक जगह पर न रूकना हाथ पैर आदि अंगों को फेंकना, पटकना, शरीर का लाल रंग होना, कमजोरी होना, कमजोर होने पर भी बल होना तथा अधिक बड़बड़ाना वातजन्य उन्माद के लक्षण है।[1]

अस्थानहास स्मृतिनृत्यगीतवाङ्ग विक्षेपणरोदनानि।
पारूष्य कार्श्यारुणवर्णताश्च जीर्णे बलं चानिलजस्य रूपम्।।

च. सं. चि. स्थान 110

पित्तजन्य उन्माद

नेत्रों में लालिमा असहिष्णुता, विदग्धता दौडकर चलना दूसरों को डराना धमकाना, छाया शीतल वस्तु एवं शीतल वस्तु एवं शीतल जल की इच्छा क्रोध करना तथा शरीर का पीला पड़ना पित्त जन्य उन्माद के लक्षण है।[2]

संरम्भामर्षवैदग्ध्यमभि द्रवण तर्जनम्।
छाया शीतान्नतोयेच्छा रोषः पीतोष्णदेहता।। प्र. अ. 122 श्लोक 37

कफजन्य उन्माद

स्त्री तथा एकान्तप्रिय निद्रा अधिक आना कम कम बोलना मुख से लार चलना वमन भोजन के बाद उन्माद वृद्धि नख नेत्र तथा जिह्वा का सफेद होना कफजन्य उन्माद के लक्षण है।

नारी विविक्तप्रियता निद्रारोचौ मनाग्वचः।
लाला द्वर्दिर्बले भुक्तो नखादिषु च शुक्लता च।। प्र. अ. श्लो 32

सन्निपातजन्य उन्माद

वात, पित्त कफ जन्य उन्माद के जो लक्षण कहे गए हैं वे सभी सन्निपातजन्य उन्माद में भी दिखाई देते हैं। इसकी चिकित्सा नहीं है। क्योंकि एक दोष की चिकित्सा करने पर दूसरा दोष कुपित हो जाता है। यह असाध्य होने के कारण वर्ज्य है।[4]

संमिश्रलक्षणो वर्ज्य उन्माद सान्निपातिक।। प्र 36/ 12/ 38

आगुन्तक उन्माद

देवता राक्षस आदि (ऋषि गन्धर्व पिशाच एवं पितरों) के कोप से उत्पन्न उन्माद को आगन्तुक उन्माद कहते हैं।[5] आचार्य चरक के अनुसार देवप्रकोप से अतिरिक्त जन्मान्तर में विहित अनुचित कर्मों के प्रभाववश यह उन्माद होता है।

देवर्षि गन्धर्व पिशाच यक्ष रक्षः पितृणामभिघर्षणानि।
आगन्तु के तु नियमवतादि मिथ्याकृतं कर्म च पूर्वदेहे।। च. सं कि 23

योगों के आधार पर उन्माद के कारणों का निर्णय

प्रायः मानसिक रोगों का वास्तविक कारण अव्यक्त होता है। उस कारण ही भली-भाँति जानकारी के विना इस रोग की चिकित्सा असम्भव होती है। मानसिक रोगों की जानकारी में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इन रोगों के वास्तविक कारण का प्रभाव मनुष्य की अन्तश्चेतना पर पड़ता है जिसे आसानी से नहीं जाना जा सकता है। ज्योतिष शास्त्र भूत, भविष्य एवं वर्तमान में घटित होने वाली घटनाओं का कार्य कारण सहित विवेचन करता है। ज्यौतिष शास्त्र के आचार्यों ने मानसिक रोगों के कारणों को जानने के लिए विविध योगों को कहा है।

1. चन्द्र शुक्र तथा अष्टमेश अनिष्ट स्थानों में ही तब विषय भोजन या उपवास के कारण उन्माद होता है।
2. चन्द्र शुक्र एवं अष्टमेश गुलिक राहु या केतु के साथ हो तो अपवित्र भोजन से उन्माद होता है।
3. पंचमस्थान में पापग्रह हो तो भय या शोक से उन्माद हाता है।
4. पंचमस्थ भौम के कारण निराशा वैराग्य या अकारण क्रोध से उन्माद होता है।
5. पापग्रह षष्ठस्थ होने के कारण शत्रुकृत अभिचार से उन्माद करता है
6. नवमस्थ एवं पञ्चमस्थ पापग्रहों के कारण गुरु, देवता राजा आदि के शाप, कोप या भय से उन्माद होता है।

उन्मादयोग

1. लग्न में गुरु तथा सप्तमस्थ शनि हो।
2. लग्नस्थ गुरु और सप्तम में मंगल हो।
3. लग्नस्थ शनि तथा पञ्चम नवम या सप्तमस्थ मंगल हो!
4. लग्न में क्षीण चन्द्र एवं बुध हो।

5. क्षीण चन्द्र एवं शनि व्ययभाव में हो।

1. मिथुन/कन्या में स्थित सूर्य पर गुरु की दृष्टि हो।

2. त्रिकोणस्थ शनि हो।

3. लग्न पञ्चम नवम या एकादश स्थान में पापग्रहों के साथ क्षीण चन्द्र हो।

4. सप्तम स्थान में पाप ग्रहों के साथ गुलिक हो।

5. तृतीय षष्ठ, अष्टम या व्ययभाव में पापग्रह के साथ बुध हो।

''सनक एवं योग''—पागलपन की इस अवस्था में व्यक्ति मारपीट, दंगा फसाद, गाली-गलौज एवं कलह करता है। इस रोग के कारण व्यक्ति बेकाबू हो जाता है। इस रोग का प्रमुख कारण चन्द्रमा पर पाप ग्रहों का प्रभाव तथा उसकी अनिष्टस्थानों पर स्थिति मानी गई है। पूर्णिमा को पूर्णकला चन्द्र के कारण रोग उग्र तथा अमावस्या को चन्द्र के कलारहित होने पर रोग अपेक्षाकृत शान्त रहता है।

1. पापग्रहं एवं राहु के साथ चन्द्र पांचवें 8वें या 12 वें स्थान में हो।

2. क्षीणचन्द्र राहु एवं मंगल बारहवें स्थान में हो।

3. केन्द्रस्थ सूर्य एवं चन्द्र के साथ शनि हो तब शराब एवं अन्य मादक पदार्थों के सेवन से मनुष्य सनकी होता है।

प्रमाद् एवं उसके योगों का विवेचन

पागलपन की यह वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति को अपनी सुध बुध या होश हवास नहीं होता है इस रोग के कारण रोगी अपने आप में न रहकर कुछ न कुछ वड़वड़ाता रहता है। इस रोग का विचार द्वितीयेश से किया जाता है जब द्वितीयेश पर अधिक पापग्रहों का प्रभाव होता है। तब यह रोग दोष होता है।

1. द्वितीयेश, पापग्रह एवं शनि के साथ सूर्य के साथ या मंगल के साथ रोगस्थान में होने के कारण वातप्रकोप राजा के प्रकोप तथा पित्त प्रकोप से यह रोग होता है।

अपस्मार रोग

इस रोग के कारण व्यक्ति शिथिल होकर अकस्मात गिर जाता है। मूर्च्छित हो जाता है। मुख से छाग तथा कठोर आवाज निकलती है। अंग कठोर और टेढ़े मेढे हो जाते हैं। पुतलियाँ चारों ओर घुमती है दांत मिच जाते हैं। रंग पीतवर्ण का होकर, प्यास से व्याकुल और मुखाकृति विकृत हो जाती है। श्वतंन्त मलिन्त, निहा जृम्भिका अनशन्त भगसिकी मोहिनी रोदिनी, क्रोधिनी, तापिनी

शोषणी तथा ध्वंसिनी ये रूप मिरगी की प्रयितमा दूतियाँ है। जैसे प्रिया अपने प्रितम का साथ नहीं छोडती है उसी प्रकार दूतियाँ भी इस रोगी के साथ ही रहती है। रोगी के शरीर को अपना क्रीड़ा क्षेत्र बना लेती है। जिससे रोगी का शरीर दूतियों के नाम जैसी चेष्टाएं करता है।

1 षष्ठ स्थान में चन्द्र लग्नस्थ राहु हो।

2. मंगल के साथ शनि छठे आठवें स्थान में हो।

3. शनि के साथ चन्द्र ही, इन दोनों पर भौम की दृष्टि हो

4. अष्टम स्थान में चन्द्र एवं राहु हो।

5. अष्टमस्थान में पापग्रह तथा केन्द्र में शुक्र चन्द्र युति हो।

जड़ता

जड़ता एवं बुद्धिहीनता भी एक प्रकार का मनोरोग ही है। इस स्थिति में मनुष्य को उचित अनुचित अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं होतां पागल और मूर्खो जैसी हरकतें करता है। निम्न योग ध्यातव्य हैं–

1. शनि, चन्द्र एवं गुलिक केन्द्र हो।

2. राहु के साथ तृतीयेश अनिष्ट स्थान में हो।

3. दिन में जन्म, गुलिक एवं सूर्य पर पापग्रहों की दृष्टि हो अथवा शनि के साथ तृतीयेश हो।

4. पंचमस्थ शनि हो लग्नेश पर शनि की दृष्टी हो पञ्चमेश पाप ग्रह के साथ हो

1. लग्न में स्थित चन्द्रमा एवं शनि को मंगल सप्तम दृष्टि से देख रहा हो।

2. लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा के महायोग हो।

3. लग्न मंगल एवं चन्द्र को बुध पूर्ण दृष्टि से देखता हो

4. लग्नेश और चन्द्र मंगल से पीड़ित हो।

असमनोविकार

भ्रमभय क्रोध, आलस्य, अविश्वास एवं चंचलता आदि मनोविकारों का भी जातक ग्रन्थों में विचार मिलता है।

1. चन्द्र बुध केन्द्र मे हों तथा वे शुभ ग्रहों के नवांश में न हों तब मतिभ्रम होता है।

2. दिन में जन्म बली भौमलग्न। दशम में हो तो जातक क्रोधी होता है।

3. निर्बल भौम की लग्न पर दृष्टि के कारण जातक भीरू होता है।

4. लग्नेश शनैश्चर के साथ होने पर जातक आलसी होता है।

5. कारकांश से नवमस्थगुरु एवं सूर्य हो जातक अविश्वासी होता है।

6. केन्द्रस्थ गुरु के कारण जातक चंचल होता है।

उन्मादचिकित्सा–

फलितज्योतिष ग्रन्थ प्रश्न मार्ग अध्याय 12 का 41 श्लोक में कहा है कि वातजन्य उन्माद में स्नेहपान, पित्तजन्यउन्माद में विरेचन कफजन्य उन्माद में नस्य एवं वमन तथा आगन्तुक उन्माद में वर्णित स्वस्थ क्रियाएं करनी चाहिए।

वातो न्मादे स्नेहपानं पित्रोन्मादे विरेचनम्।
शलेष्मके नस्य वमन नस्य वमन भागतुषर खिला क्रियाः॥

उन्माद की रामबाण औषधी जातक ग्रन्थों मे कल्याण घृत एवं महाकल्याण घृत के सेवन को अत्यन्त लाभदायक भानते हैं।

सप्ताष्टमषष्ठस्थाः शशिनः सौम्या हरन्त्यरिष्टाफलम्।
पापैर मिक्षचारा, कल्याण घृतं यथोन्मादं॥ 11॥

---

1. प्रश्नमार्ग अध्याय 12 श्लो 35-36
2. चर सं. चिकित्सास्थान 9/12
3 चर सं. चिकित्सास्थान 9/14
4. चर सं. चिकित्सास्थान 9/15
5. प्रश्नमार्ग अध्याय 12/40
6. प्रश्नमार्ग अध्याय12 श्लोक 46-48
7. प्रश्नमार्ग अध्याय 12 श्लोक 31-32
8. गदावली प्रकरण 3 श्लोक 44-45
9. सारावली अ 22 श्लो 33 तत्रैव 30 श्लो 38
10. जातक पारिजात अ. 6 श्लो 23 एवं 41
11. जातक तत्त्व मिश्र विवेक सू 23
12 सर्वार्थचिन्तामणि 3.3. श्लोक 115
13 प्रश्न मार्ग अ. 12 श्लोक 52
14. प्रश्न मार्ग अ. 12 श्लोक 53-55
15 जातक तत्त्व षष्ठविवेक सू 73.79

17. जातक तत्व पंचमविवेक सू. 22-27
18. जातकालंकार अध्या 3 श्लो 10-11
19. जातम परिगात–अध्याय 6, श्लोक 20
19. जातक तत्व प्रकीर्णतत्त्व 6 श्लो 8
20. जातक तत्व प्रकीर्णतत्त्व 86-92
21. जातक तत्व प्रकीर्णतत्त्व 82
22. जातक तत्व प्रकीर्णतत्त्व 24
23. जैमिनीय सूत्र अध्याय 1 पाद 2 सूत्र 51
24. जातक तत्त्व पंचमविवेक सू 12

आयुर्वेद एवं ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से मानसिक रोग निदान

डॉ. सुभाष चन्द्र मिश्र

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामादक्रोधोभिजायते।।
क्रोधात्भवति संमोह संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिः भ्रंशादबुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।[1]

विषयों का अत्यधिक चिन्तन करने से व्यक्ति विषयाक्त हो जाता है, अत्यधिक आसक्ति से कामनायें जागृत होती हैं, कामनाओं के जागरण से क्रोध उत्पन्न होता हैं, अधिक क्रोध करने से मतिभ्रम हो जाता है, मतिभ्रम से स्मरण शक्ति का नाश होता हैं, क्षीण स्मरण शक्ति से बुद्धि का विनाश और बुद्धिनाश के परिणाम स्वरूप मनुष्य पतित होकर नाश को प्राप्त होता हैं।

एषणा 3 हैं- 1. प्राण 2. धन 3. परलोक

पुरुषार्थ 4 हैं- 1. धर्म, 2. अर्थ 3. काम 4. मोक्ष

चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, माधवनिदान, आदि आयुर्वेद के ग्रन्थों में मानव जीवन में होने वाले विभिन्न रोगों का व्यापक वर्णन मिलता हैं। चरकसंहिता में कुल 8 स्थान हैं।[1]

1. सूत्रस्थान 2. विमानस्थान 3. निदान स्थान 4. शरीर स्थान 5. इन्द्रियस्थान 6. चिकित्सा स्थान 7. कल्पस्थान 8. सिद्धि स्थान। सूत्र स्थान में चार प्रकार के सूत्र हैं।

1 गुरु सूत्र 2. शिष्य सूत्र 3. प्रतिसंस्कर्त सूत्र 4. एकीय सूत्र

आयुर्वेदावतरण[3] = ब्रह्मा-दक्षप्रजापति-अश्विनीद्वय-इन्द्र-महर्षि भारद्वाज-पुनर्वसु आत्रेय एवं पुनर्वसुआत्रेय के छः शिष्य अग्निवेश, भेल, जातुकर्ण, पराशर, हरीत, क्षारपाणि।

त्रिसूत्र-त्रिस्कन्ध

आयुर्वेद की परिभाषा[4]–आयुर्वेद में चार प्रकार की आयु का विवेचन मिलता हैं, जिसको 1. हितायु 2. अहितायु 3. सुखायु 4. दुःखायु कहते हैं। आयुर्वेद वह शास्त्र है, जहां पर आयु के हित तथा शरीर में किसी प्रकार के विकार के निदान तथा उसके सशमन की जानकारी मिलती है। जैसा कहा गया हैं–

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥[5]

आयुर्वेद के लक्षण व पर्यायः–

धारि–शरीर धारण

जीवित–प्राण धाारण

नित्यग–प्रतिदिन आयु जाती रहती हैं

अनुबन्ध–आयु का सम्बन्ध पर या अपर शरीर से सदा बना रहता है।

शरीर–पंचमहाभूतों से बना 24 तत्वात्मक है

शरीर–आत्मा

रोगः–दोषों की विषमता रोग का कारण है। **"रोगादि रोगा"**।

"रोगस्तु दोष वैषम्यं दोषसाम्य अरोगता"।

तीन स्तम्भ[7]–1. सत्व 2. आत्मा 3. शरीर।

आयुर्वेद का अधिकरण–

सत्व, आत्मा, शरीर युक्त चेतना।

द्रव्यगणना[8]

द्रव्य के दो प्रकार कारण द्रव्य, कार्य द्रव्य।

द्रव्य

रोगों के कारण–काल, बुद्धि और इन्द्रियों के विषयो का मिथ्यायोग, आयोग, अतियोग।

अन्य तीन कारण–प्रज्ञापराध (बुद्धि), परिणाम (काल), असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग।

रोग का आश्रय–शरीर, मन।

सुखका आश्रय–शरीर, मन (कालबुद्धिन्द्रियार्थ समयोग)

शारीरिक दोष–वात, पित्त, कफ।

मानसिक दोष–रज, तम।

चिकित्सा सूत्र–शारीरिक दोष–दैवव्यापाश्रय, युक्ति व्यपाश्रय।

आयुर्वेद एवं ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से मानसिक रोग निदान

डॉ. सुभाष चन्द्र मिश्र

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामाद्क्रोधोभिजायते।।
क्रोधात्भवति संमोह संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिः भ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।[1]

विषयों का अत्यधिक चिन्तन करने से व्यक्ति विषयाक्त हो जाता है, अत्यधिक आसक्ति से कामनायें जागृत होती हैं, कामनाओं के जागरण से क्रोध उत्पन्न होता हैं, अधिक क्रोध करने से मतिभ्रम हो जाता है, मतिभ्रम से स्मरण शक्ति का नाश होता हैं, क्षीण स्मरण शक्ति से बुद्धि का विनाश और बुद्धिनाश के परिणाम स्वरूप मनुष्य पतित होकर नाश को प्राप्त होता हैं।

एषणा 3 हैं- 1. प्राण 2. धन 3. परलोक

पुरुषार्थ 4 हैं- 1. धर्म, 2. अर्थ 3. काम 4. मोक्ष

चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, माधवनिदान, आदि आयुर्वेद के ग्रन्थों में मानव जीवन में होने वाले विभिन्न रोगों का व्यापक वर्णन मिलता हैं। चरकसंहिता में कुल 8 स्थान हैं।[1]

1. सूत्रस्थान 2. विमानस्थान 3. निदान स्थान 4. शरीर स्थान 5. इन्द्रियस्थान 6. चिकित्सा स्थान 7. कल्पस्थान 8. सिद्धि स्थान। सूत्र स्थान में चार प्रकार के सूत्र हैं।

1 गुरु सूत्र 2. शिष्य सूत्र 3. प्रतिसंस्कर्त सूत्र 4. एकीय सूत्र

आयुर्वेदावतरण[3] = ब्रह्मा-दक्षप्रजापति-अश्विनीद्वय-इन्द्र-महर्षि भारद्वाज-पुनर्वसु आत्रेय एवं पुनर्वसुआत्रेय के छः शिष्य अग्निवेश, भेल, जातुकर्ण, पराशर, हरीत, क्षारपाणि।

त्रिसूत्र-त्रिस्कन्ध

आयुर्वेद की परिभाषा[4]–आयुर्वेद में चार प्रकार की आयु का विवेचन मिलता हैं, जिसको 1. हितायु 2. अहितायु 3. सुखायु 4. दुःखायु कहते हैं। आयुर्वेद वह शास्त्र है, जहां पर आयु के हित तथा शरीर में किसी प्रकार के विकार के निदान तथा उसके सशमन की जानकारी मिलती है। जैसा कहा गया हैं–

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।[5]

आयुर्वेद के लक्षण व पर्यायः–

धारि–शरीर धारण

जीवित–प्राण धारण

नित्यग–प्रतिदिन आयु जाती रहती हैं

अनुबन्ध–आयु का सम्बन्ध पर या अपर शरीर से सदा बना रहता है।

शरीर–पंचमहाभूतों से बना 24 तत्वात्मक है

शरीर–आत्मा

रोगः–दोषों की विषमता रोग का कारण है। **''रोगादि रोगा''।**

''रोगस्तु दोष वैषम्यं दोषसाम्य अरोगता''।

तीन स्तम्भ[7]–1. सत्व 2. आत्मा 3. शरीर।

आयुर्वेद का अधिकरण–

सत्व, आत्मा, शरीर युक्त चेतना।

द्रव्यगणना[8]

द्रव्य के दो प्रकार कारण द्रव्य, कार्य द्रव्य।

द्रव्य

रोगों के कारण–काल, बुद्धि और इन्द्रियों के विषयो का मिथ्यायोग, आयोग, अतियोग।

अन्य तीन कारण–प्रज्ञापराध (बुद्धि), परिणाम (काल), असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग।

रोग का आश्रय–शरीर, मन।

सुखका आश्रय–शरीर, मन (कालबुद्धिन्द्रियार्थ समयोग)

शारीरिक दोष–वात, पित्त, कफ।

मानसिक दोष–रज, तम।

चिकित्सा सूत्र–शारीरिक दोष–दैवव्यापाश्रय, युक्ति व्यपाश्रय।

मानस दोष–ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति, समाधि।

रोग के तीन प्रकार है–1. दोषज 2. कर्मज 3. दोषकर्मज।

व्याधि[9]

मानसिक विकार

साध्य असाध्य हो सकता है, असाध्य साध्य नहीं हो सकता। साध्य रोग के असाध्य होने का कारण विकार और प्रकृति हेतु के अधीन है।[10]

यथा–

1. रुद्र प्रकोप से–ज्वर
2. ज्वर के संताप से–रक्तापित्त
3. यज्ञ में इधर उधर भागने जल में कूदने, दौड़ने, लाघने से गुल्म
4. अधिक घृतपान–कुष्ठ, प्रमेह
5. भय, त्रास–उन्माद
6. अपवित्र वस्तु-स्पर्श से-अपस्मार
7. नक्षत्रराज मैथुनासक्त–राजयक्ष्मा उत्पत्ति

आधुनिक युग में ''अवसाद'' व्यापक रोग हैं। उदासी या (mental Depressin) अवसाद के नाम है। ''अवसाद मानसिक अस्वास्थ्यता की निशानी है। अवसाद में शारीरिक दुर्बलता तथा शारीरिक अक्षमता एक प्रमुख कारण हैं कहावत हैं कि पूर्ण स्वस्थ तन में ही पूर्ण स्वस्थ मन का वास होता है। आज के आधुनिक युग में शारीरिक ही नहीं कई सामाजिक कारण भी है। जिससे व्यक्ति अवसाद या उदासीनता के कारण मानसिक बिमारियों का शिकार हो जाता है मनुष्य की इच्छाएं आकांक्षाएं तथा अपेक्षाएँ बहुत अधिक हैं। जीवन की रफ्तार बहुत तेज हो गई है। ऐसी दशा में जब व्यक्ति अपने आपको पीछे पाता है। तो तनाव बढ़ जाता है उस तनाव को जब झेल नहीं पाता तो तन--मन दोनों विद्रोह कर उठते हैं। और परिणाम होता है अवसाद् उदासी या Dipression। आधुनिक विज्ञान तथा तकनीकी ने मनुष्य को बहुत कुछ दिया है। भौतिक रूप से मनुष्य जितना सम्पन्न हुआ है अध्यात्मिक रूप से उतना ही विपन्न हो गया है। वैभव के विलास के एक से एक समान नई-नई सुख सुविधाएं मनुष्य को भौतिक सुख पहुचाने में सक्षम हैं। एक कोने में बैठकर दुनियाँ के किसी भी कोने में कितनी ही सहजता से मनुष्य जुड़ सकता है। दूरसंचार के तीव्रगामी माध्यमों द्वारा ये दुनियां छोटी, बहुत छोटी हो गयी है। परन्तु मनुष्य का अकेलापन कहीं अधिक बढ़ गया है। मनुष्य बहुत उदास तथा तनावों से घिर गया है। मन अवसाद की घटियों में जैसे गुम हो गया है। उसकी शान्ति छिन गई हैं उसके की सहज स्मृति, उसके नेत्रों की चमक,

उसके मुखमण्डल का तेज सब न जाने कहां खो गया है। नये युग की उपलब्धियों ने व्यक्ति को इतना निराश क्यों बना दिया है। क्या मानवता का भविष्य अंधकार मय है अथवा कोई प्रकाश किरण शेष है ये सब प्रश्न आम व्यक्ति को आज के बौद्धिक वर्ग को मनो वैज्ञानिक की तथा मनश्चिकित्सकों सबको झकझोर दे रहे है। अवसाद रोधी नई-नई दवाएं बाजारों में आ रही है तथा चिकित्सा के नए-नए साधन इस दिशा में अविष्कृत किए जा रहे हैं परन्तु **''मरज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की''**

उन्माद चिकित्सा

निरुक्ति-उद् पूर्वक मद धातु से धञ् प्रत्यय करने पर (उद् = उर्ध्व = उन्मार्ग)

इस प्रकार के मानसिक विकार (दोष) उर्ध्वभाग (मस्तिष्क) में जाकर मस्तिष्क को विकृत कर मद उत्पन्न करते हैं।

सामान्य लक्षण-

बिना प्रयोजन, असंबद्ध बोलना।
बुद्धिमान्, भ्रमित दृष्टि चंचल।

भेद-2 हेतु निज 4-वात, पित्त, कफ, सन्निपातज आगन्तुक

5 प्रकार-वातज, पित्तज, (mania) कफज (malancholia) (मन्द-चेष्टा) सन्निपातज (असाध्य) आंगतुज,

सम्प्राप्ति-वात आदि प्रकुपित दोष हृदय में जाकर बुद्धि और स्मरण शक्ति को नष्ट कर मन को मोहित करते हुए विकार उत्पन्न करते हैं।

आगंतुज उन्माद-ग्रह आवेश से होता है।

भूतोन्माद 8 प्रकार का होता है।[11]

(1) देवोन्मन्त (2) शापोन्मत्त (3) पितृगृहोन्मत (4) गन्धर्वोन्मत (5) यक्षोन्मत्त (6) राक्षसोन्मत (7) ब्रह्मराक्षसोन्मत (8) पिशाचोन्मत। सुश्रत ने 8 भूतोन्ताद बताए हैं। इसमें चरकोक्त शापोन्मत्त तथा ब्रह्मराक्षसोन्मत्त के स्थान पर ''देव शत्रुग्रह'' तथा ''नाग ग्रह'' माना जाता हैं।

वाग्भट्ट ने 5 ग्रहोन्माद-कुण्माण्ड, निषाद, बेताल, प्रेत, औकिरण।

देवादिग्रहों के आविष्ट होने के कारण दो हैं।

1. रति (मैथुन) 2. अर्चना (पूजा)

वाग्भट्ट के अनुसार के तीन कारण

(1) हिंसा, (2) रति (3) अर्चना

चिकित्सा–पंचकर्म।

निज उन्माद की चिकित्सा[12]

वातज उन्माद की चिकित्सा सर्व प्रथम स्नेहन कफज तथा पित्तज उन्माद होने पर मृदुशोधन (वमन्, विरेचन), संसर्जज पेयाविलेपी, निरुह, अनुवासन वस्ति तथा नस्य निरुह, उद्वेगकारी (मन, बुद्धि शरीर के लिए) क्रियाएँ– तीक्षणनस्य, तीक्ष्ण अंजन ताड़न, आदि।

आगंतुक उन्माद[13]

युक्तिव्यपाश्रय–घृतपान (वातवृद्धि)

दैवव्यपाश्रय–मन्त्र, भक्ति, पूजा

सत्वावजय–दान आदि।

सिरामोक्षण–उन्माद् अपस्मार, तथा विषम ज्वर में **उन्माद में परस्पर प्रतिद्वन्द चिकित्सा[14]**

उन्माद	**चिकित्सा**
कामज	क्रोध
क्रोध	काम
शोक	हर्ष
ईर्ष्या	लोभ
भय–शोक	काम–क्रोध ईर्ष्या लोभ

देव, ऋषि, पितृ, गन्धर्व आदि के कारण उत्पन्न उन्माद की चिकित्सा ताड़ना के द्वारा नहीं करना चाहिए इसमें घृतपान का विधान है। रुद्र की पूजा तथा जप के द्वारा चिकित्सा की जाती है। शेष में ताड़ना के द्वारा चिकित्सा का विधान हैं।

आयुर्वेद में उन्माद की चिकित्सा–

लोहे की सींक में छेद कर पकाया गया मांस उन्माद की चिकित्सा में प्रशस्त माना गया है।

ज्योतिष शास्त्र में उन्माद[15]

ज्योतिष शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रश्नमार्ग में उन्माद के कारण तथा भेद के बारे में विस्तृत विवेचन मिलता हैं, उक्त ग्रन्थ में उन्माद के दस कारणों का वर्णन किया गया है जो कि क्रमशः

विषाक्त भोजन, अपवित्र भोजन, उपवास, भय, वैराग्य, अकारण क्रोध, अभिचार, गुरुनिन्दा, यज्ञ, आदि कर्मो में त्रुटि तथा ईश्वर निन्दा से सम्बन्धित है। उपरोक्त कारणों के आधार पर उत्पन्न उन्माद को पाँच श्रेणियों में वर्णित किया गया है। जो कि क्रमशः वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, सन्निपात जन्य एवं आगंतुक उन्माद के नाम से वर्णित है।

प्रश्नमार्ग नामक ग्रन्थ में उन्माद के लक्षणों का विवेचन इस प्रकार हुआ है। उन्माद का रोगी सामान्य अवस्था के बजाय हर काम को अतिशयोक्ति में करता हैं, जैसे जोर-जोर से हंसना, चिल्लाना, नाचनां, रोना आदि इन सभी क्रियाओं के अलावा वह कई बार जाने अनजाने में अपने शरीर तो तोड़ता, मरोड़ता है। कई बार वह गुमशुम हो जाता है कई बार उसके अंगो में अविचलगति होती है, सांस फूलने लगता है। कई बार उसे उल्टी आदि की सम्भावना भी देखी जाती है। जब कोई व्यक्ति उन्माद से पीड़ित होता है तो उसकी अंतश्चेतना (अवचेतन मतिष्क) बहुत प्रभावित होती है।[15] ज्योतिषशास्त्र के द्वारा उन्माद का विवेचन करने का मुख्य कारण हैं कि ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से हम भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों का ज्ञान करने में सक्षम् है। ज्योतिषाशास्त्र के माध्यम से काल का अध्ययन कियाा जाता है। काल ही सबसे बलवान है यहां ''काल'' से तात्पर्य समय से है। वैदिक शास्त्र की यह ''उक्ति यथापिण्डे तथा ब्रहमाण्डे'' इस आधार पर हम कह सकते है कि संसार के प्राणीमात्र तथा वस्पतियों से लेकर सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल पर जितने भी चेतन अवचेतन पदार्थ उसकी व्याख्या ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में मिलती हैं। यदि कचादित् किसी विषय का विस्तृत विवेचन नहीं हो पाया है तों यह शास्त्र के विशेषज्ञों की जिम्मेदारी हैं, अन्यथा ज्योतिष शास्त्र सभी शास्त्रों को प्रकाश दिखाकर अन्धेरे कुएं से निकालने में सक्षम् है। ऐसा शास्त्र उन्माद् जैसे शरीर के रोगों के साथ-साथ अन्य रोगों का विस्तृत विवेचन करके **''ज्योतिर्वेदों निरन्तरौ''** की उक्ति को चरितार्थ करने में सक्षम है, तथा महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है।

मानसिक रोग अनेक प्रकार के हैं।

जैसे-

1. सनक- जिसमें व्यक्ति में अभद्र भाषा के साथ-साथ क्लेश की वृत्ति रहती है।

1. पापग्रह एवं राहु के साथ चन्द्रमा पांचवे आठवें या 12वें भाव में हो।[16]
2. केन्द्र स्थान में सूर्य तथा चन्द्रमा के साथ शनि है।[17]

2. प्रमाद- प्रमाद व्यक्ति के जीवन की वह अवस्था है, जिसमें वह अविवेकी हो जाता है। उसे अपनी शारीरिक चेष्टा का ज्ञान नहीं होता।

1. जब किसी जातक की कुण्डली में द्वितीयेश पापग्रह एवं शनि के साथ रोग स्थान में हों।[18]

3. अपस्मार– अस्वभाविक रूप से शरीर शिथिल हो जाता है तथा मनुष्य मूर्छित होकर गिर पड़ता है अंगों की धड़कन बढ़ जाती है। रोगी हाथ पैर चलाता है मुंह से झाग की प्रवृत्ति देखी जाती है।[18]

अपस्मार रोग के योग[19]–

(1) जब किसी जातक की कुण्डली में शनि अष्टम् में हो, त्रिकोण में राहु तथा सूर्य हो तथा शुभग्रह बलवान हो।

(2) मंगल के साथ शनि छठें या आठवें स्थान में हों

(3) चन्द्र, मंगल एवं सूर्य लग्न या अष्टम स्थान में हो तथा पाप ग्रहों से दृष्ट हो।

अपस्मार की चिकित्सा

टप=परिवर्जन/ नाशः, स्मार–स्मृति।

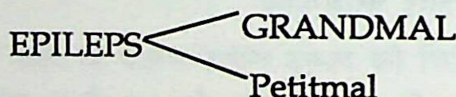
निरूक्ति–अपगता स्मृतिः यसिंमन् रोगे स अपस्मारः। अर्थात् जिस रोग में स्मृति का सर्वथा अभाव होता हैं।

''स्मृतेरपगमं प्राहुरपस्मारं भिषगविदः।''

स्मृति–अनुभवजन्यज्ञानं स्मृतिः–अर्थात बिती हुई वस्तु का ज्ञान करना।

समप्राप्ति–धमनी में अर्थात् मनोवाही श्रोत में फैले हुए दोष हृदय को पीड़ित करते है, जिसके होने पर मनुष्य ज्ञान शून्य हो जाता है। एवं मन भ्रान्त हो जाता है

पूर्वरूप–जिह्वा, नेत्र, भ्रू में फड़फड़ाहट, लाला स्राव, हाथ–पैर फेंकना दोष का वेग समाप्त होने पर ऐसे प्रतीत होता है कि रोगी अभी नींद से उठा हो।



GRANDMAL– (1) PRODRONATA (2) AURA (3) CRY (4) TONIC (5) CLONIC (6) DROWSINESS

अपस्मार के चार प्रकार[20]

1. **वातज अपस्मार**–शरीर कंप, दाँत कटकटाना श्वास में तीव्रता, लाल–काला दिखाई पड़ना। फेन।
2. **पित्तज अपस्मार**–शरीर, मुख, नेत्र पीले हो जाते हैं, पीला–लाला रूप दिखाई देता है। पीला झाग निकलता है।

3. **कफज अपस्मार**–शरीर, मुख, नेत्र, श्वेत हो जाते हैं। श्वेत वर्ण के रूप देखना।। श्वेतफेन।

4. **सन्निपातज अपस्मार**–असाध्य–कफज अपमस्मार के रोगी में चेतना देर से आती हैं सभी प्रकार के अपस्मारों में पहले पूर्व रूप होते है तथा विभिन्न रूपों को देखते हुए मूर्च्छा आती है। मुँह झाग निकलना एक सामान्य प्रक्रिया है तथा वेग समाप्त होने पर चेतना वापस आ जाती है।

वेग आने का काल–15-15 दिन। 10-10 दिन। 1-1 माह या कभी-कभी पहले भी वेग का आगमन देखा जाता है

चिकित्सा सिद्धान्त–

वातज अपस्मार में–वस्ति प्रधान

पिन्तज अपस्मार में–विरेचन प्रधान।

कफज अपस्मार में–वमन प्रधान है।

योग–ब्रहमी धृत। पञ्चमहागत्य घृत।

कारण–असत्य विषयों मे आग्रह करना।

अतत्वाभिनिवेश (अतत्व-असत्य, अभिनिवेश- आग्रह)

रज व तम, मन तथा बुद्धि को आवृत करन कर लेते हैं।

चिकित्सा–स्नेहन, स्वेदनादिपंचकर्म, संशोधन, संसर्जन (पेयविलेपी)

मानव व्यवहार एवं ज्योतिष–ज्योतिष के माध्यम से मानव व्यवहार को जानने के लिए सबसे पहले मन के कारण ग्रह अर्थात् चन्द्रमा की भूमिका का आंकलन सर्वाधिक आवश्यक हैं, चन्द्रमा की दुर्बलता या बली होना मानसिक बिमारी की तरफ इशारा करता है। **'चन्द्रमा मनसो जात'** चन्द्रमा जातक की भावनाओं अनुराग तथा मानसिंक योग्यता का सूचक है। बुध त्रिदोष कारक ग्रह है। यह शिक्षा, ज्ञान तर्क शक्ति व्यवहारिकता तथा नाड़ी मंडल की जटिलताओं का प्रतिनिधि त्व करता है। इसका शत्रुग्रह चन्द्र चन्द्रमा हैं, मन का कारक चन्द्रमा तथा ज्ञान का कारक बुध होने के कारण यह मानसिक स्वास्थ्य में उथल पुथल पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। गुरु एक शुभ ग्रह होने के साथ-साथ, मानसिक परिपक्वता तथा बुद्धिमत्ता का कारक ग्रह है, मानसिक स्वास्थ्य के विचार के समय गुरु की भूमिका भी विचारणीय है।

निष्कर्ष–यदि किसी जातक की कुण्डली में चन्द्र बुध तथा गुरु बली हो तथा अच्छी स्थिति में हो तो जातक का मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहता है परन्तु इन तीनों महत्त्वपूर्ण ग्रहों पर पाप प्रभाव हो या ये निर्बल हो तो जातक मानसिक बीमारी से ग्रस्त होता है। क्यों कि ऐसा जातक मन के आवेग तार्किक शक्ति तथा विवेकपूर्ण निर्णय के बीच सामञ्जस्य नहीं बिठा पाता, उसकी यह अयोग्यता मानसिक विचलन पैदा करती है।

पंचम भाव का कारक ग्रह वृहस्पति है, तथा पञ्चम भाव से कल्पना, तर्क, चिन्तन आदि सम्बन्धी विचार होता है यदि पञ्चम भाव पीड़ित हो तो या उस भाव पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो जातक के मानसिक स्वास्थ्य में विकार अवश्यम्भावी है। मेष राशि का कारक ग्रह मंगल हैं यदि लग्न में मेषराशि हो, तो भी मानसिक रोग की सम्भावना जातक में सम्भव हैं क्योंकि लग्न प्रथम भाव है, तथा **जातक के जीवन में प्रथमभाव** सिर, मानसिक स्थति आदि का प्रतिनिधित्व करता है। मानसिक असंतुलन मे सूर्य तथा चन्द्रमा की स्थितियों का विवेचन अत्यावश्यक है, जहां पर सूर्य की बलवान स्थिति, व्याक्ति को मानसिक सुदृढता प्रदान करती है, वहीं पर सूर्य के पीडित होने तथा उस पर पाप प्रभाव से मानसिक विचलन पैदा हो जाता है। चन्द्रमा का पीड़ित होना मानसिक असंतुलन को पैदा करता है। यदि चन्द्रमा दुर्बल हो या छठे, आठवें या बारहवें भाव में स्थित हो वह पाप ग्रहों से युक्त व छठा हो तो जातक का मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।[23]

(1) यदि चन्द्रमा सूर्य से पीड़ित हो तो जातक झगड़ालू प्रवृत्ति का एवं स्वयं के तर्को से प्रेरित होता है।

(2) यदि चन्द्र पर मंगल का प्रभाव हो तो जातक आक्रमक स्वभाव का एवं हिंसक होता है।

(3) यदि चन्द्र पर शनि का प्रभाव हो तो जातक में पागलपन उदासी, अवसाद, सनक आदि की प्रवृत्ति देखी जाती हैं।

(4) चन्द्र पर राहु का प्रभाव होने से, व्यवहार में विंसंगति, अकारणभय, तथा जातक कई बार स्वयं को ही नुकसान पहुचाने की कोशिश करता है।

(5) चन्द्र पर केतु के प्रभाव के कारण दूसरे पर अकारण संदेह, भय, सनक तथा आत्मघाती प्रवृति।

उदाहरण–चन्द्रमा यदि पाप ग्रह या राहु के साथ पांचवे, बारहवें या आठवे भाव में हो तो जातक उन्मादी, क्रोधी तथा कलह करने वाला होता है।[24] यदि कुण्डली में पञ्चमेश छठे भाव में और लग्नेश अस्त या क्रूर ग्रह से युक्त हो तो जातक क्रूर बुद्धि तथा उसका मन अशान्त रहता है।[25]

जन्माङ्गमद्–1

2 12
3 1 11
4 10
चं. रा. श. 5 7 9
6 8

जन्माङ्गमद्–2

6 4
7 5 सू. श. 3
4 2
5 11 1
10 12

यह एक स्त्री जातक की कुण्डली है, जो कि मानसिक रोग से पीड़ित है। इसे बहुत समय से अवसाद रोग है, अवसाद एक मानसिक बीमारी है। इसने कई बार आत्महत्या करने की कोशिश की हैं चिकित्सा विज्ञान ने इसे **''शिजोप्रेनिया''** का रोगी माना है। ज्योतिषीय आधार पर देखने से पता चलता है कि इस जातक की कुण्डली में चन्द्रमा बारहवें स्थान में है। अष्टमेश गुरु वक्री हैं अष्टमेश तथा पंचमेश वक्री गुरु की तथा चन्द्र की षष्ठभाव में स्थित् बुध पर दृष्टि है। पंचम भाव चिन्तन तथा बुद्धि का भाव है वहां पर सूर्य तथा राहु स्थित है। पंचम भाव का पीड़ित होना मानसिक बीमारी का सूचक है।

नवमांश कुण्डली का विवेचन करने पर यह पता चलता है चन्द्र तथा बुध अष्टमेश मंगल तथा शनि के पाप प्रभाव में है चन्द्र बुध की युति भी मानसिक व्यथा की सूचक है चन्द्र मन का कारक हैं बुध षष्ठेश अर्थात रोग कारक है। नवमांश कुण्डली में अष्टमेश मंगल पंचम भाव में है। अष्टमस्थ पंचमेश, मंगल तथा शनि से दृष्ट है। मंगल हिंसक तथा आक्रमक वृत्ति का ग्रह होकर पंचम स्थान में स्थिति है। शनि तीव्र अवसाद तथा उदासी का कारक है। अतः सभी उपरोक्त योगों के विवेचन से मानसिक रोग की पुष्टि होती है।[26]

---

1. श्रीमद्भागवत् गीता 2/62, 63
2. संक्षिप्त चरक संहिता-सूत्रस्थान दीर्घञ्जीवितीयाध्याय पृष्ठ 10 डॉ. एस. वी शुक्ल
3. चरक संता सूत्र स्थान 1/4,5
4. हेतु लिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुर परायणम्। त्रिसूत्र शाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः।। चरक संहिता-सूत्रस्थान 1/24
5. च. स. सूत्रस्थान 1/41
6. शरीरेन्द्रियसत्वात्म संयोगो धारि जीवितम्। नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायु उच्यते। च. स. सू. स्थान 1/42
7. सत्वात्मा शरीरे च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्। लोकास्तिष्ठति संयोगाष्ततसर्वं प्रतिठिठतम्।। च. सं. सू. स्थान 1/46
8. खादीन्यात्मा मनः कालो दिशश्च द्रव्य संग्रहः सेन्द्रियं चेतनं द्रव्य निरिन्द्रियम चेतनम्। चरकसंहिता सूत्र स्थान 1/48
9. चरक संहिता सूत्रस्थान-त्रिशाथीय अध्याय-19/37, 39, 30, 40, 41
10 चरक संहिता-निदानस्थान पृष्ठ 61-डा. एस. पी. शुक्ला
11. चरक संहिता-चिकित्सास्थान, 9/16
12. चरक संहिता-चिकित्सा स्थान 9/25
13. चरक संहिता-चिकित्सा स्थान 9/26
14. चरक संहिता-चिकित्सा स्थान 9/31

15. प्रश्नमार्ग अध्याय 12 श्लोक 46
16. जातक पारिजात 6/83
17. जातक पारिजात 6/81
18. सर्वार्थ चिन्तामणि 3/115
19. जातकतत्व षष्ठविवेकसूत्र 73,75
20. चरक संहिता–चिकित्सा स्थान 10/ 8, 9, 10, 11
21. चरक संहिता सूत्र स्थान 10/3, 4, 6, 7
22. चरक संहिता सूत्र स्थान (अपस्मार)
23. मनोगेग, एकादश अध्याय, चिकित्सा के मौलिक तत्व, डा. के एस. चरक
24. जातक पारिजात, जातकभङ्गा ध्याय 6/83
25. पञ्चमेशः स्थितः षष्ठे चास्तगो तनुपोऽध्या क्रूराक्रान्तः क्रूरबुद्धिर्विकलो मानवो भवेत।। होरालम् द्वितीयभाग 6-86
26. अद्बृत चिकित्सा ज्योतिष के मौलिक तत्व- के. एच. चरक

नेत्र रोग

डॉ. आलोक शर्मा

नेत्र की रचना:

अपने अगूंठे के मध्य भाग के बराबर जो अंगुल है, उन दो अंगुल के बराबर नेत्र बुद्बुद के अन्तः प्रविष्ट नेत्र हैं। अक्षिगोलक लम्बाई और चौड़ाई में अढ़ाई अंगुल है। यह आंख सुन्दर गोलाकार, गाय के स्तन के समान पांच भौतिक रचना है। यद्यपि यह तेजोमय अवयव है, तथापि नेत्र बुद्बुद में मांस पृथ्वी से, रक्त अग्नि से, कृष्णभाग वायु से, श्वेत भाग जल से, अश्रुस्रोत आकाश महाभूत से उत्पन्न होते हैं। यह आलोचक पित्त का स्थान है! चक्षु के पाश्चात्य ध्रुव पर इस आन्तरिक सांवेदनिक पटल के भीतरी पृष्ठ में एक गोला या अण्डाकार पीला धब्बा होता है जिसे पीतबिन्दु कहते हैं, जिसका व्यास 1/24 से 1/12" होता है। उसके बीच में गड्ढा होता है। आंख में पांच मण्डल, छः सन्धियां और छः पटल हैं।

ज्योतिष शास्त्र में प्रथमद्रेष्काण कुण्डली में द्वितीय स्थान से दायां नेत्र तथा बारहवें स्थान से बायें नेत्र का बोध होता है। ज्योतिष में जन्मजात रोगों का विचार करने के लिए 'योगों को महत्त्व दिया गया है।'' जबकि वात्त पित्त कफ से उत्पन्न होने वाले शारीरिक एवं मानसिक रोग तथा अंगों में पैदा होने वाली व्याधियों का विचार योगों के साथ-साथ दशा-अन्तरदशा के आधार पर किया जाता है, क्योंकि ये रोग प्रारब्ध का फल हैं और प्रारब्ध संचित का एक भाग है। अतः इनका विचार करते समय हमारे आचार्यों ने योग एवं दशा इन दोनों प्रविधियों का आश्रय लिया है तथा असंतुलित खान-पान अनियमित दिनचर्या, महामारी एवं संक्रमण रोगों को क्रियमाण कर्मों का फल माना है। चूँकि क्रियमाण कर्म संचित एवं प्रारब्ध के प्रभाववश होते हैं, अतः ऐसे रोगों का विचार करते समय योग एवं दशा के साथ-साथ गोचर का भी अध्ययन किया जाता है। आयुर्वेद में कर्मजन्य रोगों का कारण जो कर्म माना गया है, वे संचित कर्म हैं, जिसके एक भाग को प्रारब्ध कहते हैं तथा मिथ्या आहार-विहार क्रियमाण कर्म है।

नेत्र रोगों का कारण:

शरीर के गरम होने पर सहसा जल में घुस जाने से, दूरदृष्टि लगातार रखने से, नींद न आने से, निरन्तर रुदन-क्रोध-शोक-क्लेश करने से, चोट लगने से, अतिस्त्री सेवन से, शुक्त-कांजी-खटाई-कुल्थी-उरद का सेवन करने से, मल-मूत्र आदि को रोकने से, पसीने से,

धूम्रपान से, वमन के रुक जाने से या अतियोग से, आंसूओं को रोकने से, बारीक काम करने से, दोष नेत्र में रोग करते हैं।

सम्प्राप्तिः

नेत्रस्थ सिराओं का आश्रय लेकर विपरीत गति वाले दोष ऊपर की ओर आकर नेत्र भाग में रोग उत्पन्न करते हैं।

पूर्वरूपः

नेत्र गदला, शोथयुक्त, अश्रु-कण्डु-मलयुक्त, भारी, जलन-तोद-सुर्खी आदि से युक्त अस्पष्ट लक्षणों वाला होता है। पलकों के कोषो में थोड़ा दर्द, शूक से भरे पलक, आंख क्रियाओं में या रूप देखने में पहले की भांति कार्य नहीं करती।

आँख के 76 रोग :

वातजन्य रोग : हताधिमन्थ, निमिष, गम्भीरिका दृष्टि, वाताहतवर्त्म असाध्य हैं। काच रोग याप्य तथा शुष्काक्षिपाक, अधिमन्थ, अभिष्यन्द, मारुतपर्य्य व अन्यतोवाद ये पांच रोग साध्य हैं।

पित्तजन्य रोगः ह्रस्वजाड्य, जलस्राव असाध्य है। परिम्लायिकाच व नीलकाच याप्य हैं तथा पित्तजअभिष्यन्द, अधिमन्थ, अमलाप्युषित, शुक्तिका, पित्तविदग्धदृष्टि व धूमदर्शी साध्य हैं।

कफजन्य रोग : कफस्राव असाध्य व कफजकाच याप्य है। अभिष्यन्द अधिमन्थ, बलास, ग्रथित श्लेष्मविदग्धदृष्टि, पोथकी, लगण, कृमिग्रन्थि, परिक्लिन्नवर्त्म, शुक्ल, अर्म, पिस्टक तथा श्लेष्मोपनाह साध्य है।

रक्तजन्य रोग : रक्तस्राव, अजका, शेणितार्श, शतशुक्र असाध्य हैं तथा रक्तकाच याप्य है। अधिमन्थ, अभिष्यन्द, क्लिष्टवर्त्म, शिराहर्ष, शिरोत्पाद, अंजना, सिराजाल, पर्वणी, अव्रणशुक्र, शोणितार्म व अर्जुन साध्य हैं।

सर्वज नेत्र रोग : पूयस्राव, नाकुलान्ध्य, अक्षिपाक, अजली असाध्य हैं तथा काच, पक्ष्मकोप याप्य हैं। वर्त्मविवन्ध, शिरापिडिका, प्रस्तर्यर्म, अधिमांसर्म, स्नाय्वर्म, उत्संगिनी, पूयालस, अर्बूद, श्यावकर्दम, श्याववर्त्म, अर्शोवर्त्म, शुष्कार्श, शर्करावर्त्म, सशोकपाक, अशोकपाक, वहलवर्त्म, अक्लिन्नवर्त्म, कुम्भीका व विवर्त्म ये उन्नीस साध्य हैं।

बाह्यज रोगः सनिमित्त और अनिमित्त ये असाध्य हैं।

इसके अतिरिक्त सन्धि आश्रित 9, वर्त्मजन्य 21, शुक्ल भाग में 11, कृष्णभाग में 4, सर्वाश्रय 17, दृष्टिजन्य 12 तथा बाह्यजन्य 2 रोग अतिभयानक हैं।

दृष्टि?

दृष्टि का प्रमाण मसूर के पत्ते के बराबर है। ये पृथ्वी आदि पांच महाभूतों के सार से उत्पन्न हुई है। जुगनु के सूक्ष्म अग्निकण के समान चमकने वाला, उपचय और अपचय रहित तेज से युक्त, आंख के बाह्य पटल से ढकी गोल छेद वाली शीतल वस्तु के सात्मयवाली मनुष्यों की दृष्टि है।

ज्योतिषीय रतौंधी के योगः

इस रोग में जातक को रात्रि में दिखाई नहीं देता है, जबकि वह दिन में अपना सभी कार्य कर सकता है। सूर्य को छोड़कर अन्य नेत्र कारक ग्रह (चन्द्रमा एवं शुक्र) दुःखस्थानों में हो या उन पर पाप ग्रहों का प्रभाव हो तो रतौंधी होती है।

(1) चन्द्रमा के साथ शुक्र षष्ठ, अष्टम या व्यय स्थान हो।

(2) शुक्र चन्द्रमा एवं द्वितीयेश एक साथ हों व उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

(3) शुक्र चन्द्रमा एवं द्वितीयेश तीनों लग्न में हो।

विविध नेत्र रोगों का योगः

(1) षष्ठेश वक्री ग्रह की राशि में हो, तो आंखें दुःखती हैं।

(2) लग्नेश मंगल या बुध की राशि में हो उन पर इनमें से किसी एक की दृष्टि हो, तो नेत्र पीड़ा होती है।

(3) अष्टमेश एवं लग्नेश षष्ठ में हो, तो बाये नेत्र में रोग होता है।

(4) षष्ठ या अष्टम में शुक्र हो, तो दाहिने नेत्र में रोग होता है।

(5) धनेश पर शुभग्रहों की दृष्टि हो और लग्नेश पापग्रह के साथ हो, तो दृष्टि कमजोर हो जाती है।

(6) शनि, मंगल या गुलिक के साथ द्वितीयेश हो, तो आंख में दर्द होता है।

(7) द्वितीय भाव में पाप ग्रह हो और उन पर शनि की दृष्टि हो, तो नेत्ररोग से दृष्टि नष्ट हो जाती है।

(8) द्वितीय भाव के नवांश का स्वामी पाप ग्रह की राशि में हो, तो किसी रोग से दृष्टि नष्ट हो जाती है।

(9) लग्न में शयन अवस्था का मंगल हो, तो नेत्र रोग होता है।

(10) द्वितीयेश एवं शुक्र साथ-साथ हों तो नेत्र रोग होता है।

(11) शुक्र से 6, 8 या 12 स्थान में द्वितीयेश हो, तो नेत्र रोग होता है।

(12) त्रिकोण में सूर्य हो तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो, तो ज्योति नष्ट हो जाती है।

(13) लग्न में या अष्टम स्थान में सूर्य हो, तो दृष्टि कमजोर हो जाती है।

(14) सूर्य, शुक्र एवं मंगल एक साथ हो, तो नेत्र रोग होता है।

(15) चन्द्रमा एवं मंगल त्रिक में हो, तो गिरने से आंख में चोट लगती है।

(16) द्वितीयेश त्रिकस्थान में हो और उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो, तो वृद्धावस्था के कारण नेत्र रोग होता है।

(17) द्वितीयेश या द्वादंश सूर्य हो और उस पर शनि एवं गुलिक की दृष्टि हो, तो कफ एवं पित्त विकार से नेत्र रोग होता है।

भेंगापन का योगः

(1) सूर्य, चन्द्रमा वक्री ग्रह की राशि में त्रिक स्थान में हो।

(2) द्वितीय या द्वादश में पाप ग्रह के साथ शुक्र हो, तो जातक अधखुली आंखों वाला होता है।

(3) लग्न में सूर्य एवं चन्द्रमा हो और उनपर शुभ एवं पाप दोनों ग्रहों की दृष्टि हो, तो जातक के पलक चलते रहते हैं।

(4) कर्क लग्न में सूर्य हो, तो जातक की पलक लगातार चलते रहते हैं।

(5) लग्न में स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा को मंगल एवं बुध देखते हों तो जातक के आंखों में फूली होती है।

अन्धताः

यह जन्मजात, आगन्तुक-नेत्र में विकार के कारण तथा सामान्य-आयु के साथ-साथ वृद्धावस्था में मोंतियाबिंद के कारण हो सकती है। जातक ग्रन्थों में सूर्य को नेत्र कारक माना गया है और चन्द्रमा एवं शुक्र को उसका सहयोगी। इस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा एवं शुक्र इन तीनों से नेत्र एवं उसमें होने वाले रोगों का विचार किया जाता है। कुण्डली में द्वितीय भाव दाहिने नेत्र का तो द्वादशभाव बांये नेत्र का प्रतीक है। इन भावों के अतिरिक्त षष्ठ एवं अष्टम भाव में से भी नेत्र रोग का विचार किया जाता है।

जैमिनी, पराशर, वराहमिहिर, कल्याण वर्मा एवं वैद्यनाथ आदि ने स्पष्ट रूप से बताया है, कि रोग कारक ग्रह के ऊपर शुभ ग्रहों की दृष्टि-युति हो, तो वे रोग उपचार द्वारा ठीक हो जाते हैं।

अन्धता के योगः

(1) सूर्य अष्टम, चन्द्रमा षष्ठ, मंगल द्वितीय और शनि द्वादश में हो।

(2) राहु लग्न में हो और सूर्य सप्तम में हो।

(3) द्वितीय एवं द्वादश में क्रमशः सूर्य एवं चन्द्रमा हो तथा षष्ठ एवं अष्टम में पाप ग्रह हों।

(4) शनि एवं मंगल के साथ चन्द्रमा त्रिक में हो।

(5) द्वितीयेश एवं लग्नेश त्रिक में हो।

(6) सिंह लग्न में शनि हो।

(7) सूर्य एवं चन्द्रमा पाप ग्रहों के बीच में हो।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि जहां आयुर्वेद में नेत्र की रचना के आधार पर रोगों का अतिविस्तृत वर्णन किया है। आयुर्वेद के सभी संहिता एवं संग्रह ग्रन्थों में नेत्र रोग अति विस्तृत रूप से वर्णित है, वहां ज्योतिष में यह वर्णन अति सीमित रह गया है। आवश्यकता है, कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ज्योतिषीय योगों का संधान-अनुसंधान, अनुशीलन हो, जिससे ज्योतिष और आयुर्वेद मिलकर अधिक जनोपयोगी कार्य कर सके।

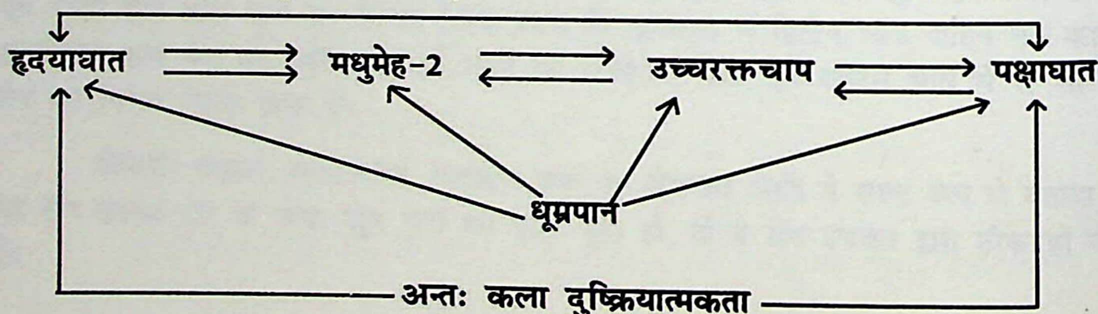
मधुमेह–कारण, लक्षण एवं उपाय

डॉ. श्रीधर द्विवेदी

मधुमेह (डायबिटीज़) अर्थात् खून में शक्कर की अधिकता, पेशाब में शक्कर की उपस्थिति तथा शक्कर के कारण मूत्र का मीठा होना, इस बात का सर्वप्रथम उल्लेख ईसा से 600 वर्ष पूर्व आचार्य सुश्रुत ने किया था। यही नहीं उन्होंने मधुमेह के कारणों का वर्णन करते हुए बताया, कि ऐसे व्यक्ति प्रायः मोटे, तोंद वाले, विलासी और चिकनाई प्रधान भोजन प्रेमी होते हैं। प्रायः मेदोरोग तथा हृत्शूल से ग्रस्त रहते हैं। आचार्य सुश्रुत का यह विवरण आज भी उतना ही सटीक, सही और विज्ञान सम्मत है। इस समय भारत में मधुमेह, उच्च रक्त चाप, हृदयाघात और पक्षाघात आदि रक्त वाहिकाओं से संबंधित व्याधियों ने महामारी का रूप धारण कर लिया है। एक मोटे अनुमान के अनुसार भारत में 11.8 करोड़ लोग उच्च रक्तचाप के, 3.55 करोड़ लोग मधुमेह (डायबिटीज़) तथा 2.98 करोड़ दिल के दौरे के रोगी हैं। भारतीय मूल के लोग चाहे वे संसार के किसी भाग में रहते हों, उन्हें हृदयाघात, उच्च रक्तचाप तथा डायबिटीज़ अन्य लोगों की अपेक्षा ज्यादा होती है।

वर्तमान काल में मधुमेह, हृदयाघात, उच्चरक्तचाप तथा पक्षाघात आदि समस्त बीमारियों को सांतत्यक व्याधि के रूप में माना जाता है। इस अवधारणा के अनुरूप मधुमेह, हृदयाघात, उच्चरक्तचाप तथा पक्षाघात में से कोई भी बीमारी होने पर इनमें से किसी अन्य व्याधियों के देर-सबेर होने की संभावना अत्यंत प्रबल होती है। अतएव किसी एक दशा के उभरते ही इन सबके रोकथाम और पथ्य का पालन करना अत्यंत आवश्यक होता है।

चित्र 1: मधुमेह तथा हृद् वाहिका व्याधियों में पारस्परिक सांतत्यकता



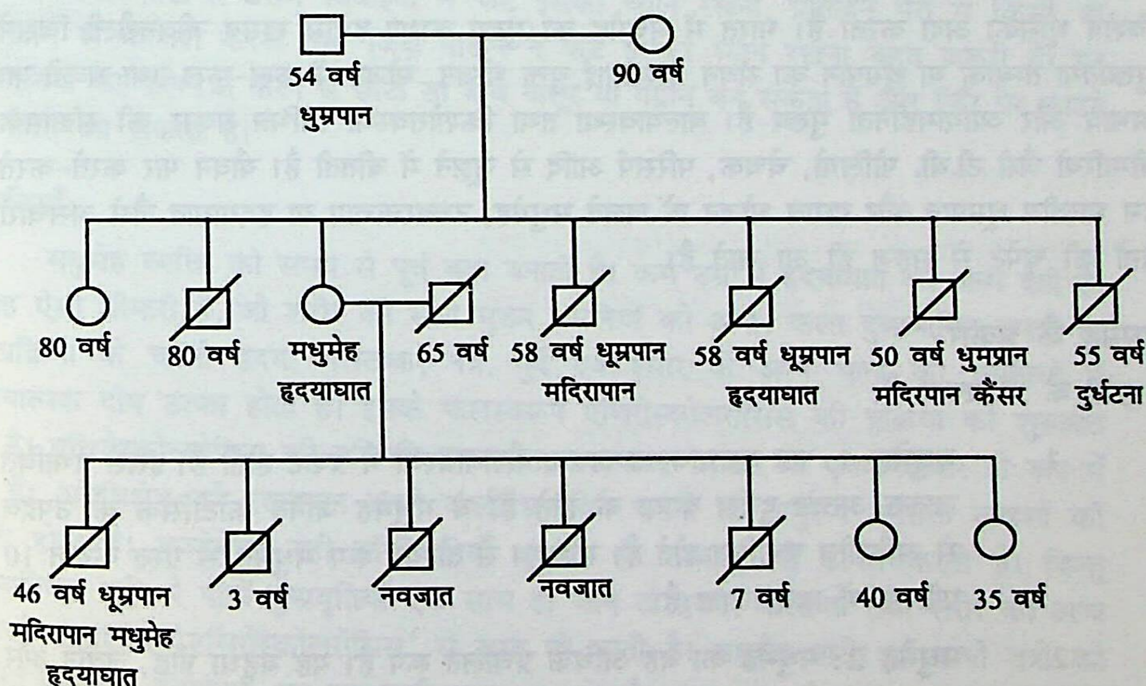
खतरे के संकेत:

मधुमेह होने के पूर्व प्रकृति कुछ संकेत देती है। ये संकेत निम्न हैं:

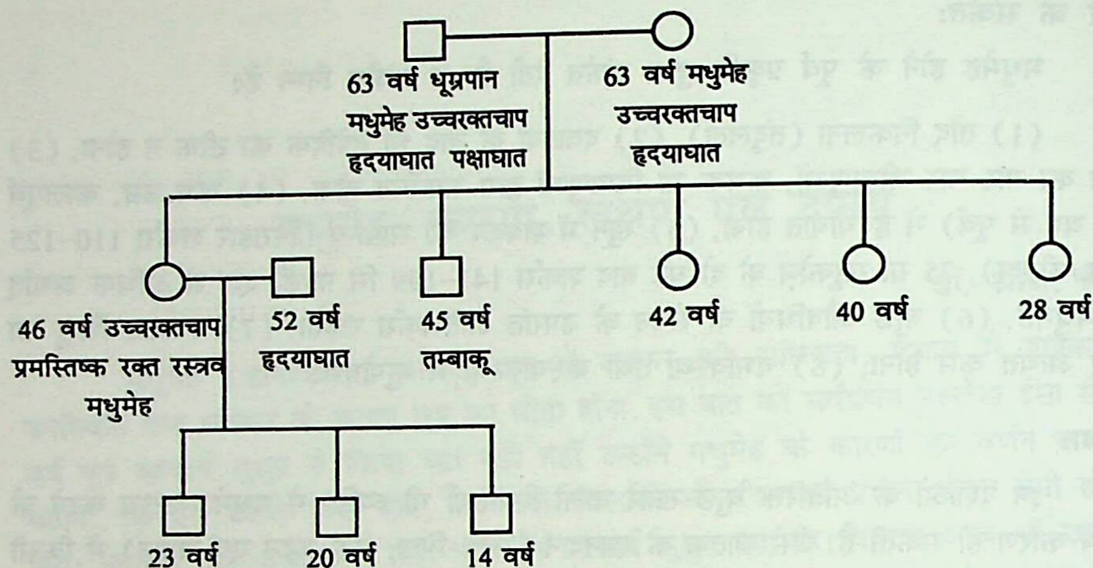
(1) तोंद निकलना (तंदुलता), (2) दवाइयों के बाद भी तपेदिक का ठीक न होना, (3) त्वचा का बार–बार जीवाणुओं, कवक या विषाणुओं द्वारा संक्रमित होना, (4) कम उम्र, कालपूर्व (35 वर्ष से पूर्व) में हृदयाघात होना, (5) खून में शक्कर की सामान्य (निराहार शर्करा 110–125 मि.ग्रा./डीएल), 75 ग्रा ग्लूकोज़ के दो घंटे बाद शर्करा 141–199 मि ग्रा/डी एल से अधिक अर्थात् पूर्व मधुमेह, (6) कुछ औषधियों के सेवन के उपरांत अतिशर्करा रक्तता, (7) नवजात शिशु का वजन अत्यंत कम होना, (8) गर्भावस्था तथा बाल्यावस्था में कुपोषण।

कारण:

इन दशाओं के अतिरिक्त कुछ खतरे वाली स्थितियाँ भी व्यक्ति में मधुमेह उत्पन्न करने के विशेष कारण हो सकती है। जैसे जातक के खानदान (माता–पिता, भाई–बहन एवं संतान) में किसी को मधुमेह होना (देखे वंशावली चित्र 2 तथा 3), भारतीय मूल के लोग, मोटापा, व्यायाम हीनता, पूर्वमधुमेह की स्थिति, अतिरक्तचाप (140/90 मिमी/पारद), अति ट्राईगिल्सराइड रक्तता (250 मि ग्रा/डी एल) उच्च घनत्व कोलेस्ट्राल की अल्पता (35 मिग्रा/ डी एल), प्रसव काल में अतिशर्करा रक्तता, नवजात शिशु का भार 4 कि. ग्रा. से अधिक होना एवं बहुपुटीय डिंबग्रंथि संलक्षण।



चित्र 2 वंशावली–तनाव, मधुमेह तथा हृदयाघात



चित्र 3: मधुमेह तथा हृद् वाहिका सांतत्यक से प्रभावित एक परिवार की वंशावली

रोज रोज का तनावपूर्ण जीवन, प्रदूषण और खराब जीवनशैली मधुमेह को जन्म देने में विशेष भूमिका अदा करती है। भारत में मधुमेह का मुख्य कारण हमारी खराब जीवनशैली जिसमें मुख्यतया तम्बाकू या धूम्रपान का सेवन, चिकनाई युक्त भोजन, भोजन में फल-फूल तथा सब्जी का अभाव और व्यायामहीनता मुख्य है। बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था विभिन्न प्रकार की संक्रामक बीमारियों जैसे टी.बी. पोलियो, चेचक, परिसर्प आदि से जूझने में बीतती है। यौवन पार करते-करते हम भारतीय धूम्रपान और खराब भोजन के चलते मधुमेह, उच्चरक्तचाप या हृदयाघात जैसे असंचारी रोगों की चपेट में सहज ही आ जाते है।

मधुमेह के प्रकार

मधुमेह के दो प्रकार हैं:

1. **मधुमेह-1:** यह बाल्यावस्था अथवा शैशवावस्था में प्रकट होती है। इससे प्रभावित जातक अत्यंत दुर्बल काया के होते हैं। ये मधुमेह जनित कोटीसिक के उपद्रव से अतिशीघ्र प्रभावित होते हैं। सौभाग्य से तो यह रूप मधुमेह से ग्रस्त केवल 10 प्रतिशत में पाया जाता है।

2. **मधुमेह 2:** मधुमेह का यह अधिक प्रचलित रूप है। यह बहुधा प्रौढ़, जवान और वृद्ध लोगों को प्रभावित करती है। इस प्रकार के मधुमेह रोगी आगे चलकर

रक्तचाप, हृदयाघात, पक्षाघात, वृक्करोग, नेत्रविकृति, मधुमेह, पाद तथा तंत्रिका विकृति से ग्रस्त होते हैं।

लक्षणः

मधुमेह की शुरुआत बहुधा बहुमूत्रता, अतिपिपासा (बार–बार प्यास लगना) अतिक्षुधा (बहुत भूख लगना) वजन कम होना, थकावट, साँस में दुर्गंध, बार–बार जगह–जगह फोड़े फुंसी होना, बालतोड़, शिश्नमुंड या योनि में खुजली होना आदि लक्षणों से होती है। कभी कभी मधुमेह का पता अचानक उस समय चलता है, जब जातक हृदयाघात, पक्षाघात, उच्चरक्तचाप, गुर्दे की बीमारी या टी बी अथवा कवक संक्रमण की व्याधि से ग्रस्त होकर अस्पताल में भर्ती होता है। जाँच के दौरान खून में शक्कर की मात्रा बढ़ी हुई मिलती है।

मधुमेह पादः

सामान्यतया पैरों की सफाई अक्सर उपेक्षित रहती है, किन्तु मधुमेह के रोगियों को अपने पैर का विशेष ध्यान रखना चाहिये; उतना ही ध्यान जितना चेहरे का रखा जाता है। मधुमेह की स्थिति में पैरों में खून का संचार शिथिल हो जाता है। तंत्रिका विकृति के कारण छोटी–मोटी चोट का अनुभव नहीं होता। पैरों में संज्ञा शून्यता रहती है। इसलिए पैर में अत्यंत सूक्ष्म घाव मधुमेह से पता नहीं लगते। इसे मधुमेह पाद कहते हैं। पैर को स्वच्छ रखना, पैरों की उँगलियों को चोट चपेट से बचाये रखना, उसमें बिवाइयाँ न फटे इसका ध्यान रखना, प्रतिदिन पैरों में किसी भी तेल–क्रीम से मालिश करना तथा जिंदा नाखून न कटे इसका ध्यान रखना बहुत जरूरी है। इन सावधानियों का पालन न करने से छोटा सा घाव नासूर या गैंग्रीन बन सकता हैं और फिर पैर काटने की नौबत आ सकती है।

विकृतियाँः

मधुमेह व्यक्ति को समय से पूर्व बूढ़ा बनाती है। कम उम्र में हृदयाघात को जन्म देती है। मधुमेह ऐसी बीमारी है, जो शरीर की सभी मुख्य धमनियों को अन्तः कला दुष्प्रभावित करती है। इस प्रक्रिया के चलते हृदय, मस्तिष्क, नेत्र, गुर्दे एवं शरीर के अन्य भागों की धमनियों में दुष्क्रियात्मक दोष उत्पन्न होता है। इसके फलस्वरूप एथिरोस्कोलरोसिस की प्रक्रिया की शुरुआत होती है। एथिरोस्कोलरोसिस की परिणति हृदयाघात, पक्षाघात, नेत्रघात या वृक्कफेल्योर के रूप में होती है। अंगविशेष को रक्तप्रदान करने वाली प्रभावित धमनी के अनुरूप उपरोक्त लक्षणों की प्रस्तुति होती है। कमोबेशी यही परिस्थितियाँ धूम्रपान या तम्बाकू भी उत्पन्न करती है। किन्तु परिस्थितिवश यदि ये दोनों दुष्प्रवृतियाँ एक साथ हो जाये तो हृदय, मस्तिष्क तथा शरीर की अन्य धमनियाँ बहुतशीघ्र 'एथिरोस्कोलरोसिस' से ग्रस्त हो जाती है। मधुमेह शरीर के सभी तंत्रों को प्रभावित करता है, विशेषतः तब जब सही उपचार न हो और रक्तशर्करा के स्तर पर उचित नियंत्रण न हो।

मधुमेह की पुष्टिः

मधुमेह का लक्षण दिखने पर निदान की पुष्टि रक्त तथा मूत्र शर्करा के परीक्षण से की जाती है। साधारणतया सामान्य व्यक्ति में निराहार शर्करा की मात्रा 110 मि ग्रा/ डी एल तथा 75 ग्रा ग्लूकोज़ के दो घंटे बाद रक्तशर्करा 200 मि ग्रा/ डी एल से कम होनी चाहिए। रक्त में शक्कर की मात्रा इन दोनों मान बिन्दुओं से अधिक होने पर मधुमेह की पुष्टि होती है। दिन में किसी भी समय रक्त शर्करा का 200 मि.ग्रा. से अधिक होना भी मधुमेह की पुष्टि करता है। नयी अवधारणा के अनुसार निराहार शर्करा यदि 110-125 मि.ग्रा./ डी एल हो या ग्लूकोज़ के दो घंटे उपरान्त 141-199 के बीच हो तो यह पूर्व-मधुमेह की परिचायक है। रक्त शर्करा के अतिरिक्त, रक्त में चिकनाई (कोलेस्ट्राल, निम्न घनत्व कोलेस्ट्राल, उच्च घनत्व कोलेस्ट्राल तथा ट्राईग्लिसराइड), रक्त यूरिया, रक्त क्रियेटिनीन, ई सी जी, मूत्र एल्ब्यूमिन, ईको (परिस्थिति अनुसार), पेट का अल्ट्रासाउँड (वृक्क दोष के लिए), ग्रीवाधमनी की अन्तः तथा मध्यकला की मोटाई, आदि का सर्वांगीण मूल्यांकन प्रत्येक मधुमेह रोगी के लिए आवश्यक होता है।

उपचारः

नियमित व्यायाम, सैर तथा भोजन में सुधार मधुमेह के उपचार का एक आवश्यक अंग है। खाने में अधिक मीठी चीज़ें जैसे शक्कर, गुड़, मिठाई, नमक एवं नमकीन वस्तुओं जैसे अचार, चटनी, चिप्स आदि के सेवन से बचना चाहिए। मधुमेह के रोगियों को प्रतिदिन सबेरे कम से कम आधे घंटे टहलना चाहिए। समय-समय पर अपने रक्त शर्करा की जाँच कराते रहना चाहिए। यदि रक्तचाप (>130/80 मि.ग्रा./पारद) हुआ हो, तो लग कर अतिरिक्तचाप का इलाज करवाना चाहिए। रक्तचाप, रक्तशर्करा के आलावा समय-समय पर खून में चिकनाई एवं गुर्दों की भी नियमित रूप से जांच करवानी चाहिए।

मधुमेह उपचार में वांछनीय/ क्लिनिकल मानदंड

- खून में शक्कर की मात्रा में नियंत्रण (HBA 1c < 7%)
- रक्तचाप >130/80 मिमी/ पारद
- कोलेस्ट्रोल मात्रा में नियंत्रण <200 mg/dl
- एल डी एल कोलेस्ट्रोल 100 mg/dl
- एच डी एल कोलेस्ट्रोल (अच्छा कोलेस्ट्रोल) 35 35 mg/dl

मधुमेह का प्रभाव शरीर के सभी अंगों पर पड़ता है, जैसे हृदय, मस्तिष्क, नेत्र एवं गुर्दे। इसको ध्यान में रखते हुए यह अत्यंत आवश्यक है, कि मधुमेह रोगी समय समय पर अपने चिकित्सक को दिखाता-सुनाता रहे। जरूरत पड़ने पर विशेषज्ञों को भी दिखाये। यदि पाँव सुन्न रहते

हों या कोई घाव हो जाए, तो ऐसी स्थिति में कदापि लापरवाही न बरते। तुरंत चिकित्सक से संपर्क करें। पैर के घाव का यदि उचित समय पर इलाज न किया जाये तो मधुमेह पाद हो सकता है और पैर काटना पड़ सकता है।

लाभकारी वनस्पतियाँ:

मधुमेह में निम्न वनस्पतियाँ लाभकारी पायी गयी हैं–बेल, प्याज, लहसुन, नीम, हल्दी जामुन, बटक्षीर, गुड़मार, मधुयष्टि, करेला, मीठी नीम, तुलसी, आँवला, विजयसार, अनार, चिरायता, मेथी, दालचीनी, गडूची, और अदरक (आद्रक)।

योगासन:

मधुमेह के नियंत्रण में यम, नियम, प्राणायाम, श्वासन, हलासन, वज्रासन, उत्तान पाद आसन, नौकासन, सर्पासन, धनुरासन–अर्द्धमत्स्येन्द्रासन योगमुद्रा–शलभासन विशेष लाभकारी माने गए हैं।

सारांश:

मधुमेह से पीड़ित रोगियों की दीर्घायु के लिए धूम्रपान और तम्बाकू का पूर्ण निषेध, नियमित व्यायाम और अधिक चिकनाई–मिठाई से बने पदार्थों से परहेज एवं भोजन में भरपूर सलाद, सब्जी और फल का प्रयोग, रक्तचाप और रक्त शर्करा पर नियन्त्रण बहुत जरूरी हैं। हम अच्छी जीवन शैली, खान–पान में सुधार और योगासन द्वारा मोटापे और मधुमेह से बच सकते हैं। स्वस्थ रह कर शतायु प्राप्त कर सकते हैं। जीवेम शरदः शतम्।

मधुमेह (Diabetes)

डॉ. संजय आचार्य

परिचयः–

मधुमेह चिकित्सा शास्त्र का एक बड़ा व्यापक रोग है। इस रोग में रक्त में शुगर की मात्रा बढ़ जाती है। सबसे पहले आचार्य सुश्रुत ने पांचवीं शताब्दी में इस रोग को मधुर मूत्र कहकर इसका परिचय दिया था। VON MERING व MINKOWSKI ने 1889 में यह पता लगाया कि जिस पशु में अग्न्याशय (Pancrease) को निकाल दिया जाए उसे मधुमेह हो जाता है। कुछ समय बाद 1895 में Leguessee ने बताया कि Pancrease के कोशिका समूह जिन्हें ISLETS OF LANGERHANS कहते हैं उसमें कुछ कोशिकाएं हैं, जो मधुमेह से संबंध रखती हैं। कुछ समय बाद HOMAN व ALLEN ने यह घोषणा की, कि Pancrease के Beta Cells में से एक स्राव जिसे चिकित्सा की भाषा में Harmone कहते हैं, निकलता है, जो रक्त में जाकर मधुमेह का निरोध करता है। इसे 1909 में De Mayer ने Insulin का नाम दिया। 1922 में सर्जन BANTING और BEST जो अभी ग्रेजुएट हुए थे, उन्होंनें TORANTO में Macleod की प्रयोगशाला में अग्न्याशय की कोशिकाओं से Insulin को पृथक कर लिया, जिससे चिकित्सा जगत में हर्षोल्लास छा गया। इस आविष्कार ने चिकित्सकों व रोगियों को एक अमूल्य रत्न प्रदान किया, जिससे मधुमेह के असाध्य रोगियों का इलाज संभव हो सका।

कारणः–

मधुमेह का रोग बहुधा 40 से 60 वर्ष के बीच के उच्च शिक्षित वर्ग के बैठकर कार्य करने वाले स्थूल नागरिकों में होता है। श्रम करने वाले ग्रामीणों में नहीं। इससे पता चलता है, कि शरीर को जितनी उर्जा वाले भोजन की आवश्यकता होती है, उससे अधिक उर्जा वाला भोजन निरंतर चिरकाल तक लेते रहने से विशेषकर चीनी व कार्वोहाइड्रेट के अधिक मात्रा में लेते रहने से इसका कुछ अंश वसा या Fat में परिवर्तित होकर वसामय प्रदेशों में बैठ जाता है, जिससे कि शरीर भारी होता जाता है। कुछ समय तक तो शरीर भोजन की खाण्ड के पचन के लिए Insulin बनाता रहता है परन्तु फिर भी अधिक शर्करा युक्त भोजन लेते रहें, तो शरीर इतना Insuiln नहीं बना पाता, जो भोजन के पाचन के लिए आवश्यक हो। इससे रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ने लगती है।

इस रोग के होने की संभावना पैतृक परम्परा से भी आती है। यदि माता पिता में यह रोग हो, तो संतान में भी यह रोग होता देखा गया है। माता-पिता दोनों के या एक के मधुमेही होने पर सन्तान में जन्म से विकृति हो सकती है, जो 30-40 वर्ष की आयु में अधिक चीनी युक्त या कार्बोहाइड्रेट युक्त भोजन पर रोग के रूप में प्रकट हो जाती है।

यह रोग खाण्ड को पचाने वाले हार्मोन के असंतुलन से या ग्लुकोज़ को पचाने वाले एनज़ाइम या स्रावों की न्यूनता से भी हो सकता है।

यदि मधुमेह रोग की प्रवृत्ति हो और शरीर में संक्रमण हो जाए, तो यह रोग प्रकट हो सकता है।

– Pancrease का संक्रमण होने या Pancrease में ट्यूमर होने पर भी यह रोग हो जाता है।

– मानसिक उद्वेग व अधिक चिंता से Adernal ग्रंथि के उत्तेजित होने से रक्त में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है।

– गर्भावस्था में स्त्रियों के अधिक आसनशील होने पर यह रोग हो सकता है।

– Growth Harmone के अधिक मात्रा में बनने व Thyroid की विकृति में भी यह रोग हो सकता है।

मधुमेह के प्रकार–

मधुमेह को मुख्यत: 3 भागो में बांटा जा सकता है।

(1) Type I Diabetes–इसमें शरीर में Insulin बिल्कुल नहीं बन पाती व अचानक से गंभीर लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यह अधिकतर छोटी अवस्था में होता है, इसलिए इसे Juvenile Onset Diabetes कहते हैं। क्योंकि इस रोग में Insulin बिल्कुल नहीं बनता, इसलिए Insuline लेने की आवश्यकता होती है, अत: उसे IDDM यानि Insulin Dependent Diabetes Mellitis कहते हैं। यह मधुमेह के कुल रोगियों में 5 से 10 प्रतिशत तक हो सकता है।

(2) Type II Diabetes–इसमें Insulin बनती है, परन्तु कम मात्रा में या फिर प्रभावकारी नहीं हो पाती है। इसमें शुरु में या तो कोई लक्षण नहीं पाए जाते है या फिर थकान, प्यास व बहुमूत्र के लक्षण मिलते हैं। यह अधिकतर बड़ी आयु में होता है, इसलिए इसे Maturity Onset Diabetes भी कहते हैं। इसमें अगर Insulin की आवश्यकता न हो, तो इसे NIDDM यानि Non Insulin Dependent Diabetes Mellitis कहतें हैं। अधिकतर रोगी इस वर्ग में आते हैं, लगभग 80 से 90 प्रतिशत तक। कुछ रोगियों को औषधियों के साथ Insulin

लेनी पड़ सकती है, जिसे IDDM यानि Insulin Dependent Diabetes Mellitis कहते हैं।

(3) तीसरे प्रकार की मधुमेह गर्भावस्था में स्थूल व आसनशील महिलाओं में हो सकता है। लगभग 2 से 5 प्रतिशत तक महिलाओं में इस अवस्था में शर्करा बढ़ जाती है, जिससे गर्भावस्था में उपद्रव होते हैं व शिशु में अनेक विकृतियां हो सकती हैं। महिलाओं में इस प्रकार का मधुमेह प्रसव के बाद ठीक हो जाता है, परन्तु बाद में आयु बढ़ने पर 20 से 50 प्रतिशत महिलाओं में यह रोग हो सकता है। ऐसे शिशुओं में भी बड़ी आयु होने पर यह रोग हो सकता है।

American Dibetic Association के अनुसार अमेरिकन महिलाओं में इस रोग की प्रवृत्ति कुछ वर्षों में बढ़कर दोगुनी हो गई है। ऐसी ही स्थिति भारत में भी बन सकती है।

स्वस्थ शरीर में शर्करा का पाचनः

भोजन में लिया हुआ कार्बोहाइड्रेट शरीर रूपी मशीन में कोयले का काम करता है। यह भोजन आंत में Glucose, Fructose व Galactose के रूप में परिवर्तित हो जाता है। आंत के संकोच के समय उससे उत्पन्न होने वाले तत्वों से Phosphorus या Phosphoric Acid को लेकर ये Glucose आदि Hexose-6-Phosphate के रुप में विलीन होती है व फिर शरीर की समस्त कोशिकाओं में विलीन होती है। इसके पाचन के लिए Hexokinase नामक Enzyme जो सब कोशिकाओं में रहता है, उसको सक्रिय करने के लिए Insulin की आवश्यकता होती है, क्योंकि इसकी अनुपस्थिति में Ant. Pitutiary व Adrenal का स्राव इस Hormone को निष्क्रिय कर देता है। यद्यपि साथ में आंत व Thyroid का स्वस्थ होना भी आवश्यक है और Vit. B Complex की उपस्थिति भी आवश्यक है। रक्त में आए इस ग्लूकोज़ में से 3 प्रतिशत तक यकृत व मांसपेशियों में पंहुचकर Glycogen के रुप में परिवर्तित हो जाते हैं व जमा हो जाते हैं, ताकि समय पड़ने पर मांसपेशियों को शीघ्र बल मिल सके। शेष ग्लूकोज़ में 70 प्रतिशत तक विभिन्न क्रियाओं द्वारा शरीर को शक्ति देने व प्रोटीन व अमीनो एसिड के निर्माण में सहायक होता है। शेष बचा हुआ ग्लूकोज़ वसा के रुप में परिवर्तित होकर शरीर के वसामय प्रदेशों प्रदेशों में बैठ जाता है, ताकि उपवास के समय व अतिकार्यभार के समय शरीर का कार्य चलाया जा सके। इसलिए कार्बोहाइड्रेट के अधिक सेवन से वसा के जमा हो जाने से शरीर का भार बढ़ जाता है। अभिप्राय यह है, कि जो खांड शरीर में खपती नहीं वह शरीर के अवयवों में Glycogen या Fat या Lipid के रुप में संचित हो जाती है व रोग का कारण बनती है।

मधुमेह में शर्करा का पाचन :

मधुमेह में शर्करा का पाचन अपूर्णता से होता है, यकृत में Glycogen के रुप में उसका संचय कम हो जाता है। वसा के रुप में उसका परिवर्तन भी कम होता है। Insulin शर्करा के शरीर में उपयुक्त व्यय के लिए अनिवार्य है। इसके न होने या कम होने पर शरीर ग्लूकोज़ को

प्रयुक्त नहीं कर पाता, जिससे रक्त में इसकी मात्रा बढ़ जाती है। जब शरीर शक्ति उत्पन्न करने के लिए ग्लूकोज़ का प्रयोग नहीं कर पाता तो यह शरीर की प्रोटीन को जलाने लगता है, जिससे शरीर की पेशियों को प्रोटीन नहीं मिलता और रोगी कृश होने लगता है साथ ही शरीर वसा का भी अधिक प्रयोग करने लगता है, जिससे रक्त में वसा कलैस्ट्रौल व Lipids के रुप में बढ़ने लगता है, जिससे B.P. बढ़ने की समस्या हो जाती है।

मधुमेह के लक्षणः

अधिकतर मधुमेह का रोग धीरे-धीरे अज्ञात रूप में होता है। बहुधा इस रोग का आरम्भ इतने अज्ञात रूप में होता है, कि बहुत काल तक इसका पता भी नहीं चलता। इसका पता सामान्य रक्त व मूत्र परीक्षण से चलता है। अधिकतर रोगी किसी दूसरे रोग का इलाज करवाने आता है व रूटीन परीक्षण करने पर रक्त व मूत्र से मधुमेह का पता चलता है। मुख्यतः आरम्भ में 03 लक्षण उत्पन्न होते हैं:

1. बार-बार अधिक मूत्र का आना–Polyurea
2. अधिक व बार-बार प्यास लगना–Polydipisa
3. अधिक भूख का लगना–Polyphagia

मूत्र दिन में व रात को बार-बार आता है। 24 घंटे में यह सामान्य डेढ़ किलो से बढ़कर 3 किलो तक हो जाता है। रक्त में बढ़े हुए ग्लूकोज़ को निकालने के लिए शरीर जल को मूत्र के रूप में अधिक निकालने लगता है, जिससे मूत्र के साथ शरीर के तत्व जल, पोटाशियम, कैलशियम व बाईकार्बोनेट भी निकल जाते हैं, जिससे अधिक प्यास लगती है।

शरीर से ग्लूकोज़ के अधिक मात्रा में निकल जाने से भूख बहुत लगती है परन्तु अधिक आहार लेने पर भी अशक्ति बढ़ जाती है व भार घटने लगता है। जल के अधिक निकल जाने से त्वचा का पोषण ठीक से नहीं होता, जिससे शुष्कता व रुक्षता हो जाती है व जीवाणु संक्रमण होने से फोड़े-फुसियां उत्पन्न होती हैं। आंतों के शुष्क होने से मलबंध या कब्ज हो जाता है, मूत्रगत खांड के मूत्र स्थान पर लगे रहने से जननांगों पर खुजली व फुंसियां हो जाती हैं। जांघों में नाड़ी शोथ का लक्षण होता है, जिससे पिण्डलियों में दर्द रहता है।

मधुमेह में रक्त परीक्षणः

खाली पेट रहने पर रक्त में शूगर की मात्रा प्रति 100 मि.ली. रक्त में 70 से 120 मि. ग्रा. तक होती है। भोजन करने के बाद यह मात्रा 140 मि.ग्रा. तक बढ़ जाती है। अगर खाली पेट यह मात्रा 120 मि.ग्रा. व भोजन के बाद 140 मि.ग्रा. से बढ़ जाए तो मधुमेह रोग का विनिश्चय हो जाता है। सामान्य व्यक्ति अगर अधिक चीनी का सेवन कर ले, तो Pancrease उत्तेजित हो जाता है व Insulin अधिक बनाता है, जिससे रक्त में चीनी की मात्रा सामान्य रहती है। जब तक

शूगर को संतुलित रखने का कार्य चलता रहता है, मधुमेह नहीं होता है, जब कार्य का प्रबन्ध ठीक नहीं रहता, तो मधुमेह हो जाता है। अगर मनुष्य दीर्घ उपवास भी करे, तो रक्त में चीनी की मात्रा नहीं घटती है, क्योंकि शरीर की ग्रंथियों जैसे एडरिनल, चिच्युटरी व थाईराईड आदि के स्राव रक्त में चीनी की मात्रा को घटने नहीं देते हैं, क्योंकि इनके स्राव Insulin के विरुद्ध कार्य करते हैं, जिसके बढ़ जाने पर Insulin का प्रभाव कम हो जाता है। इसलिए अगर इन ग्रंथियों में विकृति हो जाए, तो इनके स्राव अधिक निकलने लगते हैं, जिससे Insulin का प्रभाव कम होकर शूगर रोग हो जाता है।

रक्त की खाली पेट जांच को Fasting Blood Suger (FBS) कहते हैं। भोजन के दो घंटे बाद रक्त की जांच की जाती है, जिसे Post Prandial या PP test कहते हैं। कभी-कभी इस रोग में Oral Glucose Tolerance Test जिसे OGTT भी कहते हैं, करवाना पड़ता है, जिससे 75 ग्राम तक ग्लूकोज़ 200 से 250 मि. ग्रा. पानी में मिलाकर पिलाया जाता है और फिर परीक्षण किया जाता है।

मूत्र परीक्षणः

रक्त में अधिक मात्रा में शूगर बढ़ने पर यह मूत्र से बाहर आने लगती है। सामान्यतः 180 मि. ग्रा. होने तक यह मूत्र से बाहर नहीं निकलती है। इसे व्यक्ति की साधारण शर्करा क्षमता कहते हैं, जो अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग हो सकती है, इसलिए मृदु रोग होने पर मूत्र परीक्षा से मधुमेह का विनिश्चय नहीं होता है, मध्यम या तीव्र रोग होने पर ही होता है।

मधुमेह होने पर Serum Cholestrol भी बढ़ जाता है, अतः Lipid Profile Test भी करते हैं।

इस रोग में आवश्यकता होने पर Glycosulated Haemoglubin जिसे HBA या HBAC भी कहते हैं, किया जाता है। यह लाल रक्त कणों के जीवन व रक्त में शूगर की मात्रा पर निर्भर करता है।

मधुमेह में उपद्रवः

मधुमेह एक गंभीर रोग है, जिसमें अनेक उपद्रव उत्पन्न होते हैं। मूत्र के द्वारा जल से अधिक मात्रा में निकलने से सूक्ष्म धमनियों पर बुरा प्रभाव पड़ता है, जिससे धमनी काठिन्य रोग, जिसे Arteosclerosis कहते है, हो जाता है। रक्त में Lipids के बढ़ने पर धमनियों में वसा जमने लगता है, जिसे ATHEROSCLEROSIS कहते हैं, हो जाता है जिससे उच्च्व रक्तचाप हो जाता है, हृदय शूल व हृदय घात भी मधुमेह में अधिक होता है। पैरों की सूक्ष्म धमनियों में अवरोध के कारण पांव को रक्त कम मिलने से घाव हो जाते हैं जो gangrene का रूप ले लेते हैं, जिसमें पांव के अंगूठे व अंगुलियों को काटना पड़ सकता है।

DIABETIC NEUROPATHY:

मधुमेह जनित नाड़ी रोगः

नाड़ी शूल इस रोग का प्रारंभिक लक्षण है। जंघाओं में विशेषतः यह दर्द होता है। रात को जंघाओं में दर्द, दाह व सुप्ति की प्रतीति होती है। पिंडलियों में दर्द, निर्बलता व अशक्ति के लक्षण होते हैं। पैरों में सुप्ति होने से चोट लगकर व्रण होने का भय रहता है, जो व्रण आसानी से भरते नही हैं।

DIABETIC NEPHROPATHY :

मधुमेह जनित वृक्क रोग :

वृक्तों यानि Kidney की सिराओं में विकृति होने से मूत्र में प्रोटीन या अलब्यूमिन आने लगता है व बढ़ता ही जाता है। रक्त में यूरिया बढ़ने लगता है व रक्तभार B.P. बढ़ जाता है और पैरों में सूचन हो जाती है। वृक्कों की कार्यक्षमता कम हो जाती है व उनके पूर्णतया क्षतिग्रस्त होने का खतरा हो जाता है।

DIABETIC RETINOPATHY :

मधुमेह जनित दृष्टि रोगः

मधुमेह से दृष्टि धीरे-धीरे मंद होती है, जिससे मोतियाबिन्द हो सकता है। शीघ्रता से मंद हो, तो रेटिना में विकार हो जाता है।

DIABETIC COMA:

मधुमेह जनित मूर्च्छाः

रक्क में वसा वृद्धि होने पर रक्त में Acetone बढ़ जाता है। यह मस्तिष्क के लिए अवसादक होता है। सांस में Acetone की गंध आने लगती है व सांस लेने में कुछ कठिनाई प्रतीत होती है। श्वास केन्द्र पर प्रभाव पड़ने से रोगी गहरे-गहरे सांस लेने लगता है, जिसे Air Hunger कहते हैं। शरीर में जल की कमी से हृदयगति बढ़ जाती है। आंखे अंदर को धंस जाती हैं। धीरे-धीरे भ्रम होने लगता है और मूर्च्छा भी हो सकती है। इस प्रकार की मूर्च्छा में जल की कमी, तेज श्वासगति व श्वास में Acetone की गंध मिलती है।

TREATMENT :

चिकित्साः

मधुमेह की चिकित्सा करते समय चिकित्सक का लक्ष्य होता है किः-

1. लक्षणों को ठीक करना।
2. उपद्रवों से रोगी की रक्षा करना।
3. शरीर की शक्ति व भार को बनाए रखना।
4. रक्त में शर्करा पर नियन्त्रण रखना।

यह लक्ष्य प्राप्त करने के लिए भोजन व औषधियों से चिकित्सा की जाती है। क्योंकि Insulin कम बनती है या किसी कारण से प्रभावकारी नहीं होती, इसलिए कार्बोहाइड्रेट का भोजन अल्प मात्रा में लेना चाहिए। क्योंकि प्रोटीन व फैट पर ही नहीं रहा जा सकता, इसलिए कुछ मात्रा में कार्बोहाइड्रेट लेने पड़ते हैं, परन्तु इतनी मात्रा में लेने चाहिए, कि वह शरीर में खप सकें। दैनिक भोजन को 2–3 समय के बजाय 6–7 भागों में बांटकर देना चाहिए। रोगी की दैनिक आवश्यकता अर्थात् उसे कितने कैलारीज़ की आवश्यकता है, उस हिसाब से भोजन की व्यवस्था की जाती है। यह आयु, लिंग व दिनचर्या के हिसाब से भिन्न-भिन्न हो सकती है।

जो भोजन बिल्कुल न लिए जाएं जैसे चीनी, खांड, गुड, शहद, मिठाईयां, चॉकलेट, चीनी से बने पदार्थ, केक, मीठा बिस्कुट, आइसक्रीम, ज्यादा मीठे फल जैसे खजूर, चीकू, अंगूर, आम, पुडिंग व मद्य न लिए जाएं। कुछ स्थितियों में मद्य अल्प मात्रा में ले लिया जाए, अगर आवश्यक हो।

जो भोजन अल्प मात्रा में ले सकते हैं–रोटी, ब्रेड, गेहूं, जौ या बाजरे से बनी चीजें, पपीता, अमरुद, आलू व चावल।

जो भोजन अधिक मात्रा में ले सकते हैं–सभी तरह के मांस, मछली व अंडा, जो तला न हो। पतला सूप, चाय व कॉफी बिना चीनी या कम दूध के, मौसमी सब्जियां, फूलगोभी, बंदगोभी, भिंडी, टमाटर, कद्दु करेला, मूली, गाजर, शलगम, फ्रेंच बीन्स, प्याज, सरसों, पालक का शाक, नमक व मिर्च ले सकते हैं।

वसा–कम मात्रा के कैलोरी की पूर्ति के लिए वह भी अनसैचुरेटिड फैट जैसे सफोला, मूंगफली के तेल का प्रयोग करें।

रेशे–जिस भोजन में हरी, पत्तेदार सब्जियां, सलाद, जौं, ओट आदि रेशेदार भोजन हो, वह अवश्य लें क्योंकि यह भोजन रक्त में ग्लुकोज़ के शीघ्र समाने की प्रक्रिया को धीमा करते हैं।

–विटामिन व मिनरल साथ में ले सकते हैं।

औषधि चिकित्साः

मधुमेह के हर रोगी का परीक्षण करके उस रोग के मृदु, मध्य व गंभीर अवस्थाओं को देखते हुए औषधीय चिकित्सा की जाती है। इसके लिए मुख द्वारा ली जाने वाली अनेक औषधियां उपलब्ध हैं, जो चिकित्सक रोगियों को देते हैं, इससे शुगर तो नियंत्रित होती है, परन्तु साथ में

साईड इफैक्ट भी बहुत होते हैं, जैसे भार का बढ़ जाना, शूगर का बहुत कम हो जाना।

कभी-कभी कुछ रोगियों में Insulin भी देनी पड़ती है, ताकि शूगर नियंत्रित हो और उपद्रव न हों। यह दो प्रकार से उपलब्ध होती है:-

1. जो शीघ्र प्रभावकारी हो, जिसे Short Acting कहते हैं।

2. जो ज्यादा समय तक प्रभावकारी रहे जिसे Long Acting कहते हैं। इनका प्रयोग चिकित्सक रोग की अवस्था के अनुसार करते हैं।

व्यायाम

मधुमेह में नियमित व्यायाम से लाभ होता है, लंबी सैर भी लाभ पंहुचाती है।
सामान्य देखभाल:-

1. पूरा आराम व निद्रा लें।

2. तंबाकू, सिगरेट व मद्य का प्रयोग या तो न करें या कम करें।

3. शरीर की सफाई व पांवों का ध्यान रखें। जूते आगे से चौड़े हो, ताकि उंगलियां हरकत कर सकें।

4. रक्त की जांच, शूगर टेस्ट व वसा के लिए Lipid Profile समय-समय पर कराते रहें।

रक्त में शूगर का कम हो जाना (Hypoglycemia)

दवाईयों के लेने से या Insulin लेने से रक्त में शर्करा की मात्रा कम हो जाती है। अगर 70 मि.ग्रा. से कम हो जाए, तो दुर्बलता, बेचैनी, पसीना अधिक आना, घबराहट व शरीर का कांपना हो सकता है, जिस अवस्था में चीनी या ग्लूकोज़ का तुरन्त सेवन करना चाहिए। अन्यथा मूर्च्छा हो सकती है, जिसकी समय पर चिकित्सा न होने पर मृत्यु तक हो सकती है। इसलिए मधुमेह के रोगियों को हमेशा अपने पास चीनी या टॉफी रखनी चाहिए।

आयुर्वेद में इस रोग को प्रमेह भी कहा जाता है।

आयुर्वेद में प्रभूत मात्रा में विकृत मूत्र का त्याग करना प्रमेह शब्द का अर्थ है।

प्रमेह का सामान्य कारणः

आस्या सुखं स्वप्नसुखं दधीनी ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृत् सर्वम्।।

अर्थात् सुखपूर्वक गद्देदार आसनों पर बैठे रहना, सुखपूर्वक गद्देदार बिस्तर पर सोना, दही, ग्राम्य, जलीय व आनूप पशु-पक्षियों के मांस का अधिक सेवन करना, दूध को अधिक सेवन करना, नूतन अन्न गुड़ चीनी का विकार, खांड, चीनी, मिश्री, मिठाई व कफ को उत्पन्न करने वाली भात खीर का अधिक सेवन करना व व्यायाम को न करने सं यह रोग उत्पन्न होता है।

लक्षणः

आयुर्वेद के अनुसार प्रमेह रोग होने से पहले कुछ लक्षण पाए जाते हैं, जैसे शरीर से स्वेद व गंध का आना, अंगों में शिथिलता, सूखपूर्वक शयन आसन पर बैठने की इच्छा, शरीर का स्थूल होना, गला व तालु का सूखना आदि लक्षण न्यून व अधिक रूप में पाए जाते हैं।

आयुर्वेद में प्रमेह रोग की चिकित्साः

आयुर्वेद त्रिदोष का विज्ञान है। यह वात, पित्त व कफ पर आधारित है। वात के कारण 4 प्रकार के प्रमेह, पित्त के कारण 6 प्रकार के व कफ के कारण 10 प्रकार के प्रमेह होते हैं। इसमें समक्रिय होने से 10 प्रकार के कफ प्रमेह साध्य, विषमक्रिय होने से 6 प्रकार के पित्त प्रमेह कष्ट से साध्य और महात्यय होने से 4 प्रकार के वातज प्रमेह असाध्य होते हैं। आयुर्वेद में निदान परिवर्जन करवाया जाता है अर्थात् जिन-जिन कारणों से प्रमेह उत्पन्न होता है, उनका त्याग करवाया जाता है।

संक्षेपतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम्

प्रमेह में यव का प्रयोगः

भुने हुए जौ से बनी रोटी और सत्तु का प्रयोग करने से प्रमेह रोग नहीं होता। इस प्रकार मूंग व आंवले के नित्य प्रयोग से भी यह रोग नहीं होता है।

मधुमेह की रोगी की कफ वृद्धि होने के कारण रुक्षण व अपतर्पण चिकित्सा की जाती है तथा व्यायाम करवाया जाता है, साथ ही औषधियों का प्रयोग किया जाता है। शक्ति की हीनता को दूर करने के लिए स्वर्ण, मुक्ता, लौह अभ्रक व शिलाजीत का प्रयोग करते हैं। रुक्ष शोषण गुण वाली औषधियों व त्रिफला, त्रिवंग, करेला, नीम, लोध, बिल्वपत्र आदि का प्रयोग करने से मूत्र में शर्करा की निकासी कम होने लगती है, रात्रि को जामुन फल की मज्जा, निम्बपत्र, आंवला, गुडमार, करेला मिलाकर बनाई औषधि देने से 1-2 मास में लाभ होने लगता है। बसंतकुसुमाकर रस, स्वर्णघटित चन्द्रकांत रस आदि का प्रयोग करने से भी रोगी की शक्ति बढ़ती है। चन्द्रप्रभा शिलाजीत युक्त दिन में 2-3 बार त्रिफला के क्वाथ के साथ देने से शर्करा की मात्रा कम होने लगती है। चिकनाई रहित मट्ठा 2 समय लेना चाहिए तथा 2-4 कि.मी. प्रतिदिन भ्रमण करना चाहिए। अनेक वनौषधियों, धातुओं व खनिजों के योग इस रोग को समूल नष्ट करने में सक्षम हैं, जिसमें त्रिवंग भस्म, मेहान्तकरस, वंगेश्वर रस, वसन्तकुसुमाकर रस, स्वर्णभाक्षिक भस्म, नाग भस्म,

विडंगादि क्वाथ, त्रिफलादि क्वाथ, गोक्षुरादि वटी, देवदार्वरिष्ट, लोहासव, नीम, जामुन, गोक्षुर, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, मंजीठ, गुडुची, करेला विजयसार, त्रिफला, पाठा, सारिवा लोध्र, अर्जुन श्योनाक, आमत्वक, शतावर, गुडमार, बबूल, भल्लातक बलाचतुष्टय, आदि उचित तरीके से योग्य चिकित्सक की देखरेख में मधुमेह से रोगी को मुक्त कर देती हैं। इसके अतिरिक्त और भी अनेक औषधियां इस रोग का समूल नाश करने में सक्षम हैं। कहने का अभिप्राय है कि ये औषधियां Time Tested हैं, जो पहले भी अपना गुण व प्रभाव दिखाती रही हैं व आगे भी दिखाती रहेंगी।

मधुमेह में व्यक्तिगत अनुभव:

अपने 25 वर्षों के चिकित्सा के अनुभव में मैंने यह पाया कि 90 प्रतिशत रोगियों में अगर रोग का शीघ्र पता चल जाए, तो इस रोग को समूल नष्ट किया जा सकता है। इस संदर्भ में कुछ उदाहरण व व्यक्तिगत अनुभव बताना चाहूंगा। जब मैं नया-नया चिकित्सा क्षेत्र में आया था, उस समय जो मधुमेह के रोगी यही बताते थे, कि वे अंग्रेजी दवाई ले रहे हैं, उनकी शुगर दवाई से कम हो तो जाती है परन्तु दवाई बन्द करने पर पुनः बढ़ जाती है साथ में दवाई से साईड इफैक्ट भी हो रहे हैं। अचानक इस रोग ने मेरे परिवार में आने की सूचना दी। मेरे आदरणीय पिता श्री जी उस समय सरकारी सेवा में उच्च अधिकारी थे व अपने सम्पूर्ण सेवाकाल में पूर्ण स्वस्थ रहे थे तथा सेवाकाल के आखिरी वर्षो में उन्हें अत्यधिक सरकारी कार्य निपटाना पड़ा, सामान्य कार्य से 3 गुणा। मुझे अंदेशा होने लगा, कि इतना शारीरिक व मानसिक श्रम ठीक नहीं है। वे सेवानिवृत्त होकर घर आ गए। कुछ ही दिनों बाद मैंने देखा, कि वह बार-बार बाथरुम जा रहे हैं। मैंने पूछा तो कहा कि इस आयु में मूत्राशय की दुर्बलता से ऐसा हो जाता है। परन्तु मुझे संदेह रहा, मैंने एक शीशी में यूरिन लाने को कहा। इस यूरिन की जांच जब मैंने की, तो उसमें शूगर पाई। मैंने खाली पेट रक्त परीक्षण किया, तो वह भी 180 मि.ग्रा. से अधिक पाया। मैंने उसी दिन से परहेज़ व आयुर्वेदिक दवाई शुरु कर दी। शीघ्र ही लक्षण शांत हो गए व 2-3 महीने की दवाई से शूगर सामान्य हो गई थी। यह बात 1993 की है। इसके बाद उनके 1996 में Prostate के 3 ऑपरेशन भी हुए व सन् 2000 में हृदय का वाल्व बदलने का मेजर ऑपरेशन। यह सब शूगर रोग न होने पर संभव हो पाया। उस समय उनके रक्त के कई परीक्षण किए गए व शूगर सामान्य पाई गई। उन्होंने 1993 के बाद शूगर की कोई दवाई नहीं ली। अब हल्की मीठी चाय, मीठे फल व कभी-कभी मिठाई भी ले लेते हैं व ईश्वर की कृपा से पूर्ण स्वस्थ हैं।

एक दिन मेरे पास मेरे परम मित्र डा. दिनेश शर्मा जी आए, जो विद्यापीठ के छात्र रहे हैं उन्होंने मुझे अपने गुरुजी परम आदरणीय श्री ओंकारनाथ चतुर्वेदी जी को मधुमेह होने के बारे में बताया। मुझे अनुभव हुआ, कि डा. दिनेश जी गुरु जी से बहुत स्नेह करते हैं व उनके दुःख से द्रवित हैं। हमने औषधि भेजी व गुरुजी अब स्वस्थ हैं। हमारी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि परम श्रद्धेय श्री गुरु जी सदा स्वस्थ रहें दीघार्यु हों शतायु हों और उनका आर्शीवाद सब पर बना रहे।

पिछले वर्ष जब मैं यहां आया था, उसके बाद से मधुमेह रोगियों को हम निरंतर औषधियां

दे रहे हैं व जो निरन्तर औषधियां ले रहे हैं, वे बिल्कुल स्वस्थ है एवं औषधि समाप्त होने पर औषधि ले जाते हैं, टेस्ट भी स्वयं करवाते हैं और हमें बताते हैं कि रिपोर्ट ठीक आ रही है। लक्षण बिल्कुल ठीक हैं कोई साईड इफैक्ट नहीं है व कोई उपद्रव भी नहीं है।

आधुनिक काल में मधुमेह (Diabetes)

आज के समय मधुमेह व्यापक रूप से शहरों व कस्बों से होता हुआ गावों तक पहुंच रहा है। 80 से 90 दशक में मधुमेह 1 प्रतिशत यानि 100 में से एक व्यक्ति को होती थी। अभी हाल ही में माननीय स्वास्थ्य मंत्री श्री गुलाम नबीं आज़ाद ने बताया कि मधुमेह के रोगियों की संख्या पांच गुना बढ़कर 5 करोड़ 97 लाख पहुंच गई है यानि लगभग 5 प्रतिशत लोगों को मधुमेह हो गया है व 20 में से एक व्यक्ति मधुमेह से पीड़ित हो चुका है या होने वाला है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी ऐसे ही आंकड़े दिए हैं, कि भारत में मधुमेह के रोगियों की संख्या बहुत बढ़ रही है व अगर समय रहते प्रयास नहीं किया, तो यह एक महामारी के रूप में आने वाली है। आजकल इसे Life Style Disease कहा जाने लगा है, क्योंकि हमारा भोजन अधिक कैलारी युक्त हो गया है। चीनी, मिठाई, घी का सेवन अधिक किया जाता है व श्रम बिल्कुल नगण्य हो गया है। जिसे Sedentry Life कहा जाता है। अगर आप अधिक कैलोरी लेते हैं, हलवा भी खाते हैं, खीर, रसगुल्ला, गुलाब जामुन, इमरती जलेबी व Fast Food पिज़ा, बर्गर भी खाते हैं दाल में जोरदार घी का तड़का मारते हैं, फिर गद्देगार बिस्तर पर बैठकर भुजिया, चिप्स का आनंद लेते हुए टी. वी. देखते रहते हैं व ऑफिस या कार्यक्षेत्र में भी आराम दायक कुर्सी पर बैठकर कार्य करते हैं। कभी व्यायाम या सैर नहीं करते, तो समझिए आप मधुमेह को निमन्त्रण भेज रहे हैं। बाद में चिकित्सक आपका मीठा बंद करवा देगा व रोज खूब सारी दवाईयां दे देगा। फिर भी न संभले तो इन्सुलिन के इन्जैक्शन रोज लगवाने पड़ेंगे तो जैसे कि मि. नटवरलाल में अमिताभ बच्चन जी कहते हैं, कि यह जीना भी कोई जीना है लल्लु वाली बात हो जाएगी।

जब निराशा की कोई बात नहीं है, Life stle में थोड़ा परिवर्तन करके व अपनी परिस्थिति व स्थानानुसार Physical work करके इस रोग से बचा जा सकता है। बड़े शहरों में कभी-कभी साल में एक बार मैराथन होती है, ऐसे ही रोज सुबह थोड़ा दौड़ना, जोगिंग, साईकिल चलाना, तैरना या अपनी रुचि के अनुसार Indoor या Outdoor Game में अवश्य भाग लेना चाहिए। सेवा भावना से जुड़ी पदयात्रा या कारसेवा भी कर सकते हैं। विदेशों में जरा सी नदी गंदी हो जाए, तो लोग एकदम सफाई करने में जुट जाते हैं। दिल्ली में यमुना कितनी गंदी है, यह सभी जानते हैं। सरकार NGO की सहायता से ऐसे कार्यो को सम्पन्न करा सकती है, बस प्रेरित करने की बात है, कि थोड़ा सा Physical काम करने से अगर मधुमेह जैसे रोग से बचा जा सके, तो इसमें व्यक्ति, समाज, सरकार सबका ही लाभ है। फिर भी 40 वर्ष के बाद रक्त की नियमित जांच करवाते रहना चाहिए। वर्ष मे एक बार और अगर मधुमेह को गया हो, तो भी चिंता की बात नहीं है। Herbal या आयुर्वेदिक औषधियां इसका समूल नाश कर देती हैं।

मानसिक रोग कारण एवं उपचार

डॉ. रवि चन्द शर्मा

प्रस्तावना

मानव शरीर को संचालित करने वाला मुख्य अंग मस्तिष्क (ब्रेन) कहलाता है इसके कई भाग हैं जो शरीर के विभिन्न संस्थानों को संचालित एवं नियन्त्रित करते हैं। इस की बनावट तथा कार्यप्रणाली बहुत ही जटिल है तथा अन्य सब प्राणियों से ज्यादा विकसित, भिन्न एवं उत्तम है। इसी मस्तिष्क का एक भाग ऐसा है जिसे हम मन (माईड) कहते हैं जिसे मस्तिष्क में किसी एक जगह चिन्हित नहीं किया जा सकता। मन मनुष्य को एक उच्चतम दर्जे का सामाजिक प्राणी बनाता है।

मन मुख्य तौर पर हमारे विचार, व्यवहार एवं भावनाओं को नियन्त्रित करता है। इन तीनों में से एक या अधिक क्षेत्रों में असन्तुलन दिखाई देने पर उसे मानसिक विकार या मानसिक रोग कहा जा सकता है। मानसिक रोग व्यक्ति के मन के साथ साथ उसके शरीर, परिवार एवं समाज को भी प्रभावित करते हैं इसलिए जब तक कोई व्यक्ति मानसिक तौर पर स्वस्थ न हो तब तक उसे पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भी रोग या दुर्बलता से मुक्त होना ही स्वास्थ्य की निशानी नहीं है अपितु **स्वास्थ्य** एक ऐसी अवस्था है, जिसमें व्यक्ति पूर्ण रूप से शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक तौर पर स्वस्थ हो। अतः मानसिक स्वास्थ्य पूर्ण स्वास्थ्य का एक अहम अंग माना गया है। मानसिक स्वास्थ्य का मतलब है खुद से खुश, सन्तुष्ट एवं सुरक्षित महसूस करना, दूसरों से सुखद सम्बन्ध रखना, जिंदगी की जरूरतों को पूरा करने में सक्षम होना, सृजनात्मक कार्य करने तथा अपने समुदाय के लिए योगदान करने के योग्य होना है।

मानसिक रोग तथ्य एवं भ्रान्तियाँ

तथ्य

विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़ो के अनुसार किसी भी देश में जिसमें हमारा देश भी शामिल है, जनसंख्या का दो प्रतिशत भाग गम्भीर मानसिक रोगों जैसे–स्किजोफ्रेनिया, बाईपोलर डिसआर्डर, आंगिक मनोविक्षिप्तता और गहन अवसाद से ग्रस्त देखा जाता है, जिन्हें तत्काल

मनोचिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। साधारण तीव्रता के मानसिक रोग जैसे चिंता मनस्ताप, हल्की उदासी, मनोशारीरिक रोग आदि 5 से 6 प्रतिशत जनसंख्या को प्रभावित करते हैं।

भ्रान्तियाँ

प्रश्नः–1 क्या मानसिक रोग आनुवंशिक या खानदानी रोग है?

उत्तरः–सभी मानसिक रोग आनुवंशिक नहीं होते। अधिकांश रोगियों के बच्चे स्वस्थ होते हैं और सामान्य जीवन बिताते है।

प्रश्नः–2 क्या मानसिक रोग संक्रामक होते हैं? रोगी के साथ रहने से क्या अन्य व्यक्ति भी रोगग्रस्त हो जाते हैं?

उत्तरः–मानसिक रोग संक्रामक नहीं हैं और वे एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को नही फैलते।

प्रश्नः–3 क्या भूत-प्रेत, जादू-टोना, बुरी शक्तियों के दुष्प्रभाव के कारण या देवी देवताओं की नाराजगी से मानसिक रोग होते हैं?

उत्तरः–मानसिक रोग भूतप्रेत, जादू-टोना, बुरी शक्तियों के दुष्प्रभाव के कारण या देवी-देवताओं की नाराजगी के कारण नहीं होते। मस्तिष्क के अन्दर होनेवाले जैव-रसायनों में परिवर्तन, अत्यधिक विपरीत परिस्थितियों या पारिवारिक एवं सामाजिक तनावों के कारण मानसिक रोग हो सकते हैं।

प्रश्नः–4 क्या हस्तमैथुन, स्वप्न दोष और वीर्य की क्षति से मानसिक रोग होते हैं?

उत्तरः–हस्तमैथुन और स्वप्नदोष हमारे यौन जीवन की सामान्य बातें है। इनसे कोई नुकसान नहीं होता है। वीर्य की क्षति से न तो कमजोरी ही आती है और न ही इसके कोई दुष्प्रभाव पड़तें है। लेकिन यदि कोई अपना अधिकांश समय हस्तमैथुन पर ही केन्द्रित रखे, तो वह चिन्ता, हीनभावना, कुंठा और उदासीनता का शिकार हो सकता है।

प्रश्नः–5 क्या शराब पीने से मानसिक रोग होते है?

उत्तरः– मस्तिष्क की कोशिकाओं को शराब से क्षति पहुंचती है। ज्यादा मात्रा में, लम्बे समय तक नियमित शराब पीने से विभिन्न प्रकार के गम्भीर मानसिक रोग होते हैं।

प्रश्नः–6 क्या मानसिक रोगों का इलाज है? क्या दवाईयां सहायक होती हैं?

उत्तरः– मस्तिष्क की कोशिकाओं को शराब से क्षति पहुंचती है। ज्यादा मात्रा में, लम्बे समय तक नियमित शराब पीने से विभिन्न प्रकार के गम्भीर मानसिक रोग होते हैं।

प्रश्नः– 6 क्या मानसिक रोगों का इलाज है? क्या दवाईयां सहायक होती हैं?

उत्तरः–दवाईयां मानसिक रोगों के इलाज का एक प्रमुख तरीका है। मानसिक रोगों का ईलाज है। दवाईयां लेने से मस्तिष्क में आया असंतुलन ठीक हो जाता है और लक्षण कम हो जाते हैं तथा समाप्त हो जाते हैं। जिस प्रकार शारीरिक रोगों में दवाईयों से लाभ होता है ठीक उसी प्रकार मानसिक रोगों में भी दवाईयों से लाभ होता है।

प्रश्नः–7 मानसिक रोगियों को मानसिक चिकित्सालय में भर्ती करवाना क्या हमेशा आवश्यक होता है?

उत्तरः–यह आवश्यक नही हैं। मानसिक रोगों से ग्रस्त व्यक्ति घर पर ही दवाईयाँ ले सकते हैं और परिवार के सदस्यों की सहायता से शीघ्र अच्छे हो सकते हैं। रोगी की चिकित्सा की व्यवस्था उसके घर/ गांव में ही करना सर्वोतम है। कुछ मामलों में रोगी को मानसिक चिकित्सालय में भर्ती करवाना लाभकारी होता है जब व्यक्ति का घर पर ईलाज सम्भव न हो या उसे किसी विशेष इलाज की आवश्यकता हो।

प्रश्न :–8 शादी कर देने से क्या मानसिक रोग ठीक हो सकता है?

उत्तरः–यदि किसी व्यक्ति की रोगी अवस्था के दौरान शादी कर दी जाये तो उस व्यक्ति की स्थिति और भी बिगड़ सकती है। क्योंकि शादी एक अतिरिक्त समस्या या तनाव का रूप ले सकती है। ठीक हो जाने पर कोई भी रोगी शादी कर सकता है लेकिन शादी करने के संदर्भ में मनोचिकित्सक की सलाह अवश्य लें।

प्रश्नः–9 क्या मानसिक रोगी हिंसक होते हैं?

उत्तरः–गम्भीर मानसिक रोग से ग्रस्त व्यक्ति का डॉक्टरी उपचार न करवाया जाए या उससे भेदभाव, घृणा या किसी किस्म की जबरदस्ती की जाए तो वह उत्तेजित या हिंसक हो सकता है।

प्रश्नः–10 क्या ठीक हो गए रोगी अपने उतरदायित्व निभा सकते हैं, जैसे काम करना?

उत्तरः–मानसिक रोगी अपना काम कर सकते हैं और अपने उतरदायित्वों को भी निभा सकते हैं। जब वे बीमार होते है तब उन्हें किसी और की देखरेख में कार्य करने की आवश्यकता होती है। ठीक होने पर वे अन्य व्यक्तियों की तरह सामान्य जीवन व्यतीत कर सकते हैं। केवल कुछ रोगियों को ही आजीवन किसी और की देख रेख में कार्य करने की आवश्यकता पड़ती है।

मानसिक रोगी की क्या विशेषताएं हैं?

एक मानसिक रोगी में तीन विशेषताएं देखी जाती हैं:

1. व्यक्ति की बातचीत एवं व्यवहार में असामान्यता देखी जाती है जो उसके विचार, भाव, प्रत्यक्षीकरण, स्मृति एवं विवेक में बार-बार होने वाले परिवर्तन का सूचक होती है।
2. व्यवहारिक परिवर्तन स्वयं, अन्य या दोनों को कष्टप्रद होता है।
3. असामान्य व्यवहार और उससे उत्पन्न कष्ट रोगी के व्यक्तिगत, सामाजिक एवं व्यवसायिक कार्यक्षेत्र को बाधित करता है।

मानसिक रोगी कौन है तथा उसके लक्षण क्या है :

1. वह जो अर्थहीन बातें करता हो, अजीब सा व्यवहार करता हो तथा जिसे लोग असामान्य मानते हों।
2. वह जो बहुत ही शान्त हो और दूसरों से बातचीत नहीं करता तथा उन से मिलता जुलता भी नहीं।
3. वह जिसका यह कहना है कि उसे वो चीजें सुनाई/दिखाई देती है जो दूसरों को सुनाई या दिखाई नहीं देती हैं।
4. वह जो बहुत शक्की हो और कहता है कि लोग उसे नुकसान पहुंचाना चाहते हैं।
5. वह जो बहुत असामान्य रूप से प्रसन्न रहता हो और हंसी मजाक करता हो तथा यह कहता हो कि वह बहुत धनवान एवं दूसरों से अच्छा है जो कि सत्य नहीं है।
6. वह जो कुछ दिनों से उदास रहता हो और बिना कारण रोता रहता हो।
7. वह जो आत्महत्या की बातें करता हो या जिसने आत्महत्या करने का कोई प्रयास किया हो।
8. जिसे अकारण चिन्ता, घबराहट, परेशानी, अनजाना भय रहता हो, एकाग्रता की कमी हो, कम्पन या अधिक पसीना आता हो।
9. जिसे अकारण लम्बे समय से सिर दर्द या शरीर के कई भागों में दर्द या अकड़न रहती हो।
10. वह जिसमें देवी-देवता या भूत-प्रेतों की आत्मायें प्रकट होती हों या जिसके बारे में यह कहा जाता हो कि उस पर जादू टोने या बुरी शक्तियों का प्रभाव है।
11. वह जिसे आंगिक शिथिलता होती हो, शरीर में झटके लगते हों या बेहोशी जैसे दौरे पड़ते हों।
12. वह जिसे किसी जीव, वस्तु, स्थान या विशेष कार्य से बहुत डर लगता हो।

13. जो एक ही काम बार-बार करता रहता हो और न चाहते हुए भी उसे करने के लिए बाध्य होता हो।
14. जिसकी यादाशत कमजोर हो, जो परिचित व्यक्तियों या स्थानों को भी नहीं पहचान पाता हो, अपने शरीर का ख्याल नहीं रख पाता हो।
15. वे जो समय की दृष्टि से कमजोर हैं या जिनका विकास उनकी आयु के अन्य व्यक्तियों जैसा नहीं है या जन्म से ही जिनका विकास धीमा है।
16. अत्यधिक चंचल बालक/व्यक्ति जो थोड़ी देर भी एक जगह न बैठ पाता हो।
17. वे जो असामान्य उद्दण्डता, अनुशासनहीनता, समाज विरोधी क्रियाकलापों में सलंग्न रहते हों।
18. वे जो नियमिततापूर्वक या अत्यधिक मात्रा में नशीले पदार्थों जैसे शराब, भांग, अफीम आदि का प्रयोग करते हैं।
19. जिन्हें रात को कम, अधिक या बिल्कुल नींद नहीं आती।
20. जिनमें शीघ्रपतन, नपुसंकता आदि सैक्स सम्बन्धी विकार हों।

मानसिक रोगों के प्रकार

मानसिक रोग बुरे मानसिक स्वास्थ्य का परिणाम है और ये रोग शारीरिक रोगों की तरह ही होते हैं। मनोविक्षिप्तता और मनस्ताप आमतौर पर होने वाले मानसिक रोग हैं। इसके अलावा दूसरी अवस्थायें हैं जैसे –मंदबुद्धि, मद्यपान एवं नशीले पदार्थों पर निर्भरता, बच्चों एवं वृद्धों में होनेवाले एवं अन्य कई तरह के मानसिक रोग।

1 मनोविक्षिप्तता (साईकोसिस):

ये गम्भीर किस्म के मानसिक रोग हैं तथा मुख्यतौर पर चार तरह के हो सकते हैं।

- कम अवधि की या तीव्र मनोविक्षिप्तता
- बार-बार होने वाली मनोविक्षिप्तता जैसे द्विध्रुवीय असन्तुलन (बाईपोलर डिसआर्डर)
- दीर्घकालीन मनोविक्षिप्तता जैसे विखण्डित मानसिकता (स्किजोफ्रेनिया) जिसे आम भाषा में पागलपन या उन्माद कहते हैं।
- आंगिक मनोविक्षिप्तता जो कि शारीरिक रोगों या मस्तिष्क की क्षति के कारण होती है।

साईकोसिस में रोगी का व्यवहार असामान्य होता है, उसकी व्यक्तिगत एवं सामाजिक क्रियायें बाधित होती हैं जैसे अपनी शारीरिक सफाई (हाथ मुंह धोना, नहाना, कपड़े बदलना, कंघी करना) आदि पर ध्यान न देना ओर न ही परवाह करना। कभी कभी बिस्तर या कपड़ों में ही मल-

मूत्र विसर्जन कर देना। अपने परिवारजनों, सहकर्मियों, मित्रों के साथ बुरा व्यवहार करना, गालियां देना उनका अपमान करना अथवा उन पर हमला करना। उसे कई तरह के विभ्रम और मतिभ्रम होते हैं जिससे उसका वास्तविकता से सम्पर्क टूट जाता है तथा उसे अपने व्यवहार के परिणामों का सही बोध नहीं होता। वह समाज के कायदे कानूनों का उल्लंघन करता है तथा उसे यह महसूस नहीं होता कि वह बीमार है इसलिए वह अक्सर ईलाज करवाने के लिए तैयार नहीं होता।

2. मनस्ताप

ये साधारण तीव्रता के मानसिक रोग हैं। ऐसे रोग अक्सर दबाबपूर्ण परिस्थितियों के प्रति अत्यधिक या दीर्घकालीन प्रतिक्रियायों के कारण होते हैं। ऐसे रोगों में घबराहट, भय, उदासी. अस्पष्ट दर्द, बेहोशी जैसे दौरे आदि लक्षण देखे जाते हैं। उदाहरण के तौर पर चिंता मनस्ताप, हिस्टीरिया, फोबिया, मनोशारीरिक रोग आदि।

3 मंदबुद्धि

ऐसे व्यक्तियों का मानसिक विकास जन्म से ही धीमा होता है और उनमें बुद्धि की कमी के साथ साथ सामाजिक समायोजन की क्षमता सीमित होती है।

4. मद्यपान एवं मादक पदार्थों का दुष्प्रयोग

शराब, दवाईयों एवं अन्य नशीले पदार्थों के दुष्प्रयोग से व्यक्ति उन पर निर्भर हो जाता है और उसे नशे की आदत पड़ जाती है जिससे उसमें नशा करने की तीव्र इच्छा होती है और यदि वह नशे के सेवन की मात्रा कम करे या उसे बन्द कर दे तो उसमें कुछ विशिष्ट लक्षण देखे जाते हैं जिन्हें प्रतिगमनात्मक लक्षण या विदड्रावल सिमटम्स) कहते हैं।

मानसिक रोगों के कारण

1. **मस्तिष्क जनित कारक–** अधिकांश गम्भीर मानसिक रोग (साइकोसिस) स्नायु कोशिकाओं में होने वाले जैव रसायनिक परिवर्तनों के कारण होते हैं। इसके अतिरिक्त यदि सिर की चोट, संक्रमण, रक्त स्त्राव, गांठ, ट्यूमर, विटामिनों की कमी, अनियन्त्रित मिर्गी, मद्यपान या नशीले पदार्थों के दुष्प्रयोग आदि से यदि मस्तिष्क क्षतिग्रस्त होता है तो भी मनोविक्षिप्तता हो सकती है।
2. **आनुवंशिक कारक–** गुणसूत्र सम्बन्धी कारकों की बजह से परिवार के कुछ अन्य सदस्य भी उसी रोग से ग्रस्त हो सकते हैं। हालांकि कई बार परिवार के किसी व्यक्ति विशेष में ही यह कारक मानसिक रोग का कारण बनता है।
3. **मनोसामाजिक कारक–** पारीवारिक तनाव, दबाव, कलह, ईर्षा द्वेष, भी व्यक्ति के मन पर अनावश्यक प्रभाव डालते हैं जिससे उसकी विपरीत परिस्थितियों एवं दबावों से निपटने की क्षमता बाधित होती है और वह रोग ग्रस्त हो सकता है।

सामाजिक कारक जैसे असुरक्षा, अन्याय, भेदभाव, गरीबी, बेरोजगारी आतंकवाद भी व्यक्ति को मानसिक रोगी बना सकते हैं।

4. **बाल्यावस्था के कटु अनुभव–** किसी को बचपन में यदि समुचित स्नेह प्रोत्साहन दिशा–निर्देश और अनुशासित जीवन जीने का अवसर न मिले तो उस व्यक्ति के व्यक्तित्व मे अपरिपक्वता रहती है और भविष्य मे उसे मानसिक रोग हो सकता हैं।

मानसिक रोगों का उपचारः

अधिकांश ग्रामीण लोग आज भी यह सोचते हं कि मानसिक रोगों का इलाज सम्भव नहीं है क्योंकि यह रोग बुरी नजर, जादू टोना, भूत प्रेत, ग्रहों के दुष्प्रभाव आदि के कारक होते हैं और इसलिए वे पण्डित, ओझा, तांत्रिक, मौलवी आदि के पास ईलाज के लिए जाते हैं। अज्ञानता, भय गरीबी के कारण भी लोग ऐसे रोगियों को अस्पताल नहीं लाते। आज के समय में मानसिक रोगों का विभिन्न प्रकार से उपचार किया जाता हैः

1. औषधियाँ

गम्भीर मानसिक रोगों (साइकोसिस) के लिए औषधियाँ उपचार का मुख्य अंग मानी जाती हैं। कई प्रकार की असरकारक औषधियाँ बाजार में उपलब्ध हैं जिन्हें शीघ्र प्रारम्भ करके यदि डॉक्टर की नियमित सलाह से लिया जाये तो बहुत लाभ मिलता है। यह इलाज कई बार बहुत लम्बे समय तक भी चल सकता है।

2. विद्युत आक्षेपी उपचार (इलेक्ट्रो कनवल्सिव थीरेपी-इ.सी.टी.)

कुछ विशेष प्रकार के मानसिक रोगों मे यह प्रयोग मे लाई जाती है जैसे कि गहन अवसाद। यह काफी असरकारक है लेकिन इसे अन्तिम उपचार की संज्ञा देना गलत होगा।

3. परामर्श तथा मन्त्रोपचार साइकोथींरेपी

जब व्यक्ति वातावरण जनित कारकों से मानसिक रोगी हुआ हो तो उसका उपचार परामर्श एवं मनोपचार पद्धति से किया जाता है इसमें उसकी व्यक्तिगत, पारिवारिक या सामाजिक समस्या को सुना व समझा जाता है तथा उसके साथ बैठकर उसे इस काबिल बनाया जाता है ताकि वह अपने रोग के लक्षणों को समझ सके और अपनी समस्याओं से सही ढंग से निपट सके। यहाँ पर समूह के रूप में या पति–पत्नि दोनों के साथ भी बातचीत की जा सकती है ताकि वस्तुस्थिति को समझकर विषम परिस्थितियों मे परिवर्तन लाकर उन्हें सुधारा जा सके।

4. सामाजिक पुनर्स्थापन (सोशल रिहैबिलिटेशन)

दीर्घकालीन मानसिक रोगी क्योंकि पूर्ण रुप से ठीक नहीं हो पाते और उनका व्यवहार भी सामान्य नही हो पाता इसलिए उन्हें अतिरिक्त लाभ पहुंचाने हेतु निम्नलिखित कार्यों में व्यस्त रखा जाता है:

- लिफाफे, अगरबत्ती खिलौने या बांस की टोकरियां बनाना।
- चित्रकारी करना।
- गाना गाना, ढोलक, बाजा बजाना।
- गेंद खेलना आदि।

सारांश

मानसिक रोग शारीरिक रोगों की तरह ही होते हैं जो व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में जैव रसायन परिर्वतन, आनुवंशिक कारक, मनो-सामाजिक कारक या बाल्यकाल के कटु अनुभवों से पैदा होते हैं। मानसिक रोग मुख्यतः गम्भीर या साधारण प्रकार के होते हैं तथा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक प्रकार्यों के साथ-साथ उसकी व्यक्तिगत एवं सामाजिक गतिविधियों को बाधित करते हैं। मानसिक रोगों के लिए विभिन्न प्रकार की कारगर औषधियाँ, मनोपचार, विद्युत आक्षेपी उपचार एवं सामाजिक पुर्नस्थापन पद्धतिया उपलब्ध हैं।

सन्देश

मानसिक रोगी हम सब की तरह ईश्वर की सन्तान है उनमें से कोई हमारा परिचित, मित्र या सम्बन्धी भी हो सकता है ऐसे रोगियों से भयभीत होना, भेद भाव या घृणा करना, उनका तिरस्कार करना, मजाक उडाना, तंग करना, शारीरिक, मानसिक या यौन उत्पीड़न करना न केवल कानूनी अपराध है बल्कि मानवाधिकारों का उल्लंघन भी है। मनोरोगी व्यक्ति को यदि किसी चीज की जरुरत है तो वह है हमारा उसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, कुछ स्नेह, सहायता, मार्गदर्शन एवं उपचार, सामाजिक मान्यता एवं सम्मान पूर्वक जीवन जीने को प्रोत्साहन।

ज्योतिषशास्त्र में नेत्र रोग विचार

डॉ. बिहारी लाल शर्मा

ज्योतिष परम पवित्र एवं दिव्य विद्या है। भारतीय मनीषा में विद्या मुक्ति के अर्थ में ही ग्राह्य रही है।"सा विद्या या विमुक्तये" वेद के छः अङ्गों शिक्षा,कल्प,व्याकरण,निरुक्त,एवं छनद में इसका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान सुरक्षित है। यह वेदों के नेत्र रूप में वर्णित है। ज्योतिषशास्त्र काल-चक्र का प्रामाणिक इति वृत्त प्रस्तुत करते हुए कालातीत सत्ता के साक्षात्कार के मार्ग का उद्घाटन करता है, ज्योतिष का अर्थ ही प्रकाश है, अतः यह अन्धकार से प्रकाश की, असत् से सत् की, अविद्या या अज्ञान से ज्ञानोन्मेष की विकासयात्रा को संकेतित करता है। दर्शन का एक सर्वमान्य शरीर में है वही विराट् ब्रह्माण्ड में है। इस सिद्धान्त का ज्योतिषीयप्रतिपादन प्रस्तुत करते हुए वैदिक ऋषि मानव के विभिन्न आयामों का उससे सीधाा सम्बन्ध सीापित करते हैं, जो सिद्ध करता है कि व्यक्ति रूपी यह ईकाई उसी विराट् कालपुरुष का एक अभिन्न अङ्ग है, उससे घनिष्ठ रूपेण जुड़ा हुआ है। उदाहरणार्थ वैदिकज्योतिष की परम्परा में ऋषियों एवं आचार्यों ने सूर्य को काल पुरुष की आत्मा कहा है, ब्रह्माण्ड में यह विराट् आत्मा का प्रतिनिधित्व करता है, जो केन्द्रक शक्ति है, समग्र सृष्टि का गति दाता है, सविता है, व्यक्ति के पार्थिव शरीर में भी वही शक्ति विद्यमान है जिसे उसके जन्माङ्ग में स्थित सूर्य व्यक्त करता है, चन्द्र कालपुरुष का मन है मानवीय शरीर की भी समस्त मानसिकता जन्मकालीन चन्द्रस्थिति से अभिव्यक्त होती है इसी प्रकार मंगल को सत्त्व बुध को वाणी, गुरु को ज्ञान, शुक्र को काम, शनि को दुःख एवं द्वादश राशियों को कालपुरुष के विभिन्न अङ्गों में विभाजित करते हुए उनसे इस पिण्ड को सीधा जोडकर पराशरादि ऋषियों एवं वराहमिहिरादि आचार्यों ने मानवीय सत्ता के असीमित विस्तार का रहस्योद्घाटन प्रस्तुत किया है।

ज्योतिष शास्त्र के होरा विभाग में जन्मकालीन ग्रह-नक्षत्र एवं राशियों की जन्माङ्ग के द्वादश भावों में स्थिति के आधार पर शुभाशुभ फलों का विस्तार से विवेचन किया गया है। उदाहरणार्थ- जन्मकाल में जो राशि एवं भाव पापाक्रान्त होते हैं, वह राशि एवं भाव काल पुरुष के जिस अङ्ग में विकृति एवं पीड़ा होती है। इसी तरह जन्माङ्ग में यदि किसी अङ्ग विशेष की प्रतिनिधि राशि भाव भावेश एवं उस भाव का कारक ये सभी पीड़ित हैं तो काल पुरुष के उस अङ्ग विशेष में पीडितकरने वाले ग्रहविशेष की प्रकृति के अनुरूप रोग अथवा पीड़ा होती है। संक्षेप में स्वयं को समझने का सुलभ एवं प्रामाणिक का मार्ग प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर व्यक्ति अपनी सकारात्मक एवं नकारात्मक जन्मजात एवं सम्भावित प्रवृत्तियों को समझ कर उनमें आवश्यक

परिष्कार एवं संस्कार करते हुए सन्तुलन एवं सामञ्जस्य सीापित करके मुक्तिपूर्ण जीवनयापन करता हुआ अपने आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक ऋणोंके निवारण में समर्थ हो सकें।(सम्भवतः) इस शास्त्र का उपदेश करने में ऋषियों का यही अभीष्ट प्रतीत होता है अन्यथा निर्जन अरण्यों में सर्वस्व त्यागगर आत्मज्ञान से पोर-पारे सरावोर होने वाले ऋषियों के पवित्र जीवन में चमत्कार प्रदर्शन का सम्बन्ध कभी रहा ही नहीं था, उन्होनें अस विद्या को मानव को नियति पाश में जकड़ने भाग्य के हाथों गिरवी रखने के लिए नहीं अपितु उसे अपने बन्धन की श्रृङ्खलाओं को समझने एवं उनसे मुक्त होने के सफल संघर्ष की मंगलमयी कामना के साथ रचा था।

ज्योतिष के प्राचीन ग्रन्थों में नेत्र सम्बन्धी विविध रोगों के अनेक योगों का वर्णन मिलता है।

(नीयते नयति वा दृष्टिर्विषयोऽनेनेति नेत्रम्)

आयुर्वेद की दृष्टि से नेत्र में 5 मण्डल (Circles), 6 सन्धि (Junctions), 6 पटल (Layers) होते हैं।

इन सभी से सम्बद्ध होकर नेत्र में होने वाले रोगों का विचार करते हुए आचार्य सुश्रुत ने 76 प्रकार के रोगों का, आचार्य माधव ने 78 प्रकार के रोगों का तथा आचार्य वाग्भट्ट ने 94 प्रकार के नेत्ररोगों का वर्णन किया है। पाश्चात्त्य वैज्ञानिक नेत्र रोगों की संख्या की सीमा का सही निर्धारण सम्भवतः अभी तक कर नही पाये हैं।

नेत्र के जीवन में महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए आचार्य वाग्भट्ट ने लिखा है-

चक्षुरक्षायां सर्वकालं मनुष्यैर्यतनः कर्त्तव्यो जीविते यावदिच्छा।
व्यर्थो लोकोऽयं तुल्यरात्रिन्दिवानां पुंसामन्धानां विद्यमानेऽपि वित्ते।।[1]

अन्धे व्यक्तियों के लिए रात और दिन एक समान हैं। अर्थात् यह संसार ही उनके लिए व्यर्थ है। धन-धान्य एवं सर्वसुखसाधन प्रस्तुत होने पर भी उसका जीवन व्यर्थ है। अत एव मनुष्य को चाहिए कि वह अपने नेत्रों की रक्षा के लिए सदा सर्वदा जीवनपर्यनत प्रयत्लशील रहे।

नेत्ररोग सम्बन्धी कुछ नियम यहाँ दिये जा रहे हैं-

1. वैदिक ज्योतिष के अनुसार जन्माङ्ग के द्वितीय तथा द्वादश भाव को नेत्र स्थान माना गया है। इन भावों तथा भावेशों का पापपीड़ित होनो नेत्ररोग का कारण होता है।
2. सूर्य व चन्द्रमा भी नेत्रज्योति के कारक हैं। इन पर पापग्रहों की दृष्टियुति भी नेत्र विकार या दृष्टि दोष दिया करती है।
3. सूर्य+चन्द्रमा+शुक्र की युति त्रिक में हो तथा द्वितीय द्वादश भाव पापाक्रान्त हों तो नेत्र रोग होते हैं।
4. नेत्र रोग के कारकभाव- द्वितीय+द्वादश

नेत्ररोग में सहायकभाव- द्वितीयेश+द्वादशेश, द्वितीय एवं द्वादश में स्थित ग्रह।

शन्यारयोगे गुलिकेन युक्ते नेत्रेश्वरे तत्र तु नेत्र रोगः।
नेत्रे यदा पाप बुहत्वयोगे यमेनदृष्टे सति रुग्ण नेत्रः।।

अर्थात् द्वितीय भाव में शनि, गुलिक और मंगल की युति द्वितीयेश के साथ हो तो नेत्ररोग देते हैं। द्वितीयभाव यदि अनेक पाप ग्रहों से युत हो एवं उन पर शनि की दृष्टि या दुष्प्रभाव हो तो भी नेत्र विकार होता है।

उत्कृष्ट नेत्र

नेत्रे शुभे नेत्रेशे च शुभान्वितेऽङ्गशुयते शोभननेत्रः।।[2]

नेत्रस्थान (द्विर्द्वादशभाव) शुभान्वित हो तथा नेत्रेश शुभग्रहों और लग्नेश से युत जो तो जातक के नेत्र सुन्दर होते हैं

काल पुरुष का द्वितीय सथान दक्षिण नेत्र और द्वादश स्थान वाम नेत्र समझना चाहिए। यदि ये दोनों स्थान शुभग्रहों से युक्त अथवा बलवान हों अथवा शुभ ग्रहों से सम्बन्ध स्थापित करते हों या लग्नेश से दृष्ट हों या युति बनती हो तो वह जातक उत्कृष्ट विशाल नेत्रों से युक्त होता हैं। यदि उपर्युक्त स्थित से विपरीतता पायी जाती हो तो नेत्र रोग या छोटे बदसूरत नेत्र होते हैं।[3]

बुद्बुदनेत्रता

नेत्र द्वयं पापयुतं च पापाक्रान्तौ तदीशौ बलसंयुतौ वा।
अङ्गे पतङ्गे सनिशीथिनीशे सत्पापदृष्टे यदि बुद्बुदाक्षः।।

कुलीरलग्ने सरवौ तथा भवेत्कण्ठीरवेऽङ्गे खलचारुलोकिते।
भनाथभास्वत् सहिते स बुद्बुदविलचनो नेति गदन्ति केचन।।[4]

द्वितीय स्थान और द्वादश स्थान में यदि पापग्रह हों एवं दोनों सीानों के स्वामी किन्हीं पाप ग्रहों से दृष्ट हों बुद्बृद(नेत्र गोलक बाहर की ओर निकले हुए (ठनइइसम मलमे) नेत्रता होती है। लग्न में सूर्य और चन्द्रमा युक्त एवं वह पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो भी बुद्बुद नेत्रता उत्पन्न होती है। लग्न स्थान में कर्कराशि का सूर्य हो अथवा सिंह राशि का चन्द्रमा हो एवं सूर्य से युत हो तथा पाप ग्रह से दृष्ट हो तो भी बुद्बुद नेत्रता उत्पन्न होती है।

यही बात जातकतत्त्वकार ने भी सूत्र रूप से कही है। **'इन्द्वर्कौ लग्ने मिश्रदृष्टे बुद्बुदलोचनः।'** अर्थात् लग्न स्थान में चन्द्र सूर्य की युति हो एवं इन्हें शुभ तथा पापग्रह देखते हों तो भी बुद्बुद नेत्रता होती है।

वक्रनेत्रता

पुष्पवन्तावसद्दृष्टौ वक्रर्क्षगौ वा त्रिके वक्रनेत्रः।
चन्द्रारावेकभागेऽक्ष्णोश्चिह्नम्॥[5]

सूर्य और चन्द्रमा यदि वक्री ग्रह की राशि या त्रिक में स्थित होकर असदग्रहों से दृष्ट हों अथवा चन्द्रमा और मंगल दोनों एक ही नवांश में स्थित हों तो जातक वक्रनेत्र होता है।

विषमोदय राशि में सूर्य और चन्द्र की युति हो अथवा अलग अलग बैठे हों और इन्हें पापग्रह देखते हों, अथवा द्वादश स्थान या षष्ठ स्थान में सूर्य और चन्द्र युत हों, जातक जन्म दिन का हो एवं सूर्य नष्टांश में हो तथा मंगल से दृष्ट हो या युति बनाता हो, अथवा विषमोदय राशि में सूर्य नष्टांश में तथा कर्क राशि में चन्द्रमा अधांश में स्थित हो एवं जातक का जन्म दिन का हो अथवा त्रिक स्थान या विषमोदय राशि में सूर्य एवं चन्द्रमा हो और इन्हें पापग्रह देखते हों, अथवा द्वितीय स्थान एवं द्वादश स्थान में पूर्णबली पापग्रह हों या पापग्रहों से दृष्ट हों, अथवा द्वितीयेश एवं द्वादशेश बलवान् पापग्रह हों तो जातक वक्र नेत्रता (Squinh eyed–भेंगापन) से ग्रसित रहता है।

'जातकतत्त्वकार' ने भी एक प्रमुख कारण बताया है- **''पुष्पवन्तीव सद्दृष्टौ वक्रर्क्षगौ वा त्रिके वक्रनेत्रः''** किसी वक्री ग्रह की राशि में सूर्य और चन्द्रमा स्थित हो तथा अन पर किसी पापग्रह की दृष्टि हो अथवा त्रिक स्थान में सूर्य चन्द्र स्थित हों तो वक्र नेत्रता उत्पन्न होती है।[6]

काणनेत्रता

लग्ने भौमे वा चन्द्रे शुक्रज्यदृष्टे काणः।
सिंहे चन्द्रेऽस्ते भौमदृष्टे काणः॥

कर्केऽर्के सप्तमे भौमदृष्टे काणः।
चन्द्राच्छूक्रान्त्ये वा द्यूने वामाक्षिकाणः॥[7]

शुक्र और बृहस्पति से दृष्ट मंगल चा चन्द्रमा लग्न में स्थित हो (२७३); भौम से दृष्ट सिंह राशि का चन्द्रमा सप्तमभाव हो (२७४); भौम से दृष्टि कर्कराष्ठिा का सूर्य सप्तमभावस्थ हो तो जातक काना होता है। चन्द्रमा से युक्त शुक्र द्वादश या सप्तम भावगत हो तो जातक वाम नेत्र से काना होता है।

यदि लग्न स्थान में षष्ठेश एवं मंगल हों परन्तु गुरु और शुक्र से दृष्ट न हों तो अथवा द्वितीयेश और द्वादशेश अपने स्थानों पर दृष्टि न रखते हों और स्व्यं पापग्रहों से युति बनाते हों तथा स्वयं बलवान् हों तो जातक(एकाक्षि व्दम मलमक) होता है।

यदि सप्तम स्थान में मंगल स्थित हो तथा उसे कर्क गत सूर्य एवं सिंह गत चन्द्र देखते हों तथा भाग्येश मकर, मेष, सिंह अथवा वृश्चिक राशि में स्थित हो तो जातक काणनेत्रता (एकाक्षि One eyed) प्राप्त करता है।

यदि लग्न स्थान में चन्द्र अथवा मंगल स्थित हो और इस पर गुरु अथवा शुक्र की दृष्टि हो, अथवा यदि सप्तम स्थान में कर्क गत सूर्य हो और इसे मंगल देखता हो अथवा सप्तम स्थान में सिंहगत चन्द्र हो और इसे मंगल देखता हो, अथवा यदि धन स्थान में सूर्य, शनि एवं राहु की युति हो तथा धनेश अस्तंगत स्थिति में हो एवं स्वस्थान पर दृष्टि न रखता हो साथ ही पाप ग्रह युत हो, अथवा पंचम स्थान में शुक्र या मंगल अस्तंगत स्थिति में हों अथवा यदि द्वितीय स्थान में मंगल एवं द्वादश स्थान में शुक्र स्थित हों और इन पर सूर्य चन्द्रमा की दृष्टि पड़ रही हो तो जातक काण नेत्रता (एकाक्षि One eyed) प्राप्त करता है।

यदि जातक की लग्न कुण्डली में चन्द्रमा मंगल की युति हो एवं जातक का जन्म शुक्ल पक्ष के दिन में हुआ हो तो, अथवा यदि नवम स्थान में सूर्य, शनि और चन्द्रमा की युति हो तथा अस सूर्य पर किसी शुभ ग्रह की दृष्टि हो एवं जातक का जन्म कृष्ण पक्ष के रात्रि का हो तो जातक के वामनेत्र में काणत्व होता है। यदि जातक के मुर्ध्व में सूर्य हो और इसे कोई पाप ग्रह देख रहा हो और जातक का जन्म दिन का हो तो वह दक्षिण नेत्र में काणत्व प्राप्त करता है।

यदि षष्ठेश चन्द्रमा पापग्रह से दृष्टि हो और उसे कोई शुभ ग्रह न देखता हो तो जातक दक्षिण नेत्र में काणत्व प्राप्त करता है। यदि षष्ठेश मंगल लग्न स्थान में स्थित हो और इस पर किसी भी शुभ ग्रह की दृष्टि न पड़ रही हो तथा कोई पाप ग्रह देख रहा हो तो जातक पुष्प (फूली nebula opacity of the cornea) रोग के साथ-साथ काणत्व योग प्राप्त करता है।

यदि द्वादश स्थान अथवा सप्तम स्थान में चन्द्रमा शुक्र से युति बना रहा हो तो वाम नेत्र में काणत्व आता है। यदि द्वितीय स्थान अथवा द्वादश स्थान में शुक्र किसी पाप ग्रह के साथ युति बना रहा हो तो काणत्व योग एवं दृष्टि मांद्य (Amaurosis) रोग से ग्रसित होता है।[8]

अन्धनेत्रता

यदि जातक की कुण्डली में द्वादशस्थान अथवा षष्ठस्थान में नीचराशिगत चन्द्रमा हो एवं इसे कोई पापग्रह देख रहा हो तो अथवा यदि लग्नस्थान में मंगल अस्तंगत स्थिति में हो, अथवा यदि केन्द्रस्थानों में जलराशिगत सूर्य एवं चन्द्रमा अधांशों में स्थित हों तो, अथवा यदि शनि अस्तंगत स्थिति में नीचराशि गत हो एवं जातक का जन्म सूर्यग्रहण के दिन हुआ हो तो, अथवा धनुराशि गत चन्द्रमा क्षीणावस्थ हो तथा इस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न होते हुए शनि की दृष्टि हो, किसी भी स्थान में परन्तु शनि के साथ युति बना रही हो तो, अथवा सूर्य जिस किसी भी स्थान में परन्तु इस स्थान के अगने स्थान में चन्द्रमा किसी पाप ग्रह से युत होकर स्थित हो तो, अथवा चन्द्रमा दशम स्थान में हो और किसी पाप ग्रह से दृष्ट हो तो, अथवा धनुराशि गत प्रथमांश तथा अन्धाश में चन्द्रमा हो जब कि जातक का जन्म रात्रि में हुआ हो, यदि सूर्य हो तो जातक का जन्मदिन में हुआ हो एवं यह सूर्य या चन्द्रमा शनि से दृष्ट हो तो, अथवा लग्नेश या शुक्र त्रिकस्थान में स्थित हो एवं द्वादशेश तथा द्वितीयेश के साथ युति बनती हो तो अथवा यदि धनु राशि गत चन्द्रमा शुक्र एवं कोई पाप

ग्रह की युति हो तो, अथवा यदि मंगल पापराशिगत होकर केन्द्र स्थान में स्थित हो तो अथवा यदि द्वादशस्थान में सूर्य और चन्द्रमा की युति हो परन्तु इन पर किसी शुभग्रह की दृष्टि न हो तो, अथवा यदि सप्तम स्थान में मकर या कुम्भराशि गत सूर्य स्थित हो तो, अथवा यदि लग्न स्थान में कुम्भराशि गत मंगल स्थित हो तो, अथवा यदि चतुर्थस्थान में शनि स्थित हो और यह किसी पापग्रह से दृष्ट हो तो, अथवा यदि लग्न स्थान से पाँचवें स्थान में या शुक्र से पाँचवें स्थान में राहु स्थित हो एवं यह राहु सूर्य से दृष्ट हो तो अथवा यदि तृतीय स्थान में या केन्द्रस्थान में सूर्य चन्द्र की युति हो तो, अथवा यदि लग्नस्थान गत सिंह राशि में शनि या शुक्र स्थित हो तो, अथवा यदि चतुर्थ स्थान एवं पंचम स्थान में एक एक पाप ग्रह स्थित हो और त्रिकस्थान में चन्द्रमा स्थित हो एवं किसी शुभ एवं अष्टमस्थान में सूर्य स्थित हों तो अथवा यदि द्वितीय स्थान, षष्ठस्थान, अष्टमस्थान एवं द्वादश स्थान में कहीं भी सूर्य, चन्द्र, शनि, मंगल स्थित हों तथा इन ग्रहों के जो भी ग्रह बलवान होगा उसके प्रभावानुसार वातादि दोष प्रधान नेत्र व्याधि होकर अंधता उत्पन्न होती है। अथवा यदि कर्क राशिगत मन्द और शनि की युति हो और शुभ ग्रह से दृष्ट न हो तो, अथवा यदि षष्ठ स्थान में शत्रुराशिगत चन्द्रमा स्थित हो और उसे कोई भी शुभ ग्रह न देख रहा हो तो जातक अन्ध नेत्रता से ग्रसित होते हैं।[9]

यदि सूर्य, चन्द्र तथा लग्नेश ये तीनों ग्रह किन्हीं पापग्रहों के अन्तराल में फँसे हों तो, अथवा यदि लग्नस्थान में सिंहराशि गत सूर्य हो और इस पर किसी पाप ग्रह की दृष्टि हो तो, अथवा यदि लग्नस्थान में मंगल हो एवं षष्ठस्थान में कोई भी पापग्रह हो तो, अथवा यदि द्वादश स्थान में चन्द्रमा हो और षष्ठेश वक्री होकर स्थित हो तो जातक 'अंधता' प्राप्त करता है।[10]

यदि लग्नस्थान में कोई पापग्रह हो और स्वयं लग्नेश किसी पापस्थान में स्थित हो या किसी पापग्रह के साथ युति बना रहा हो तथा सूर्य एवं चन्द्र किन्हीं पापग्रहों के अन्तराल में फँस गये हों, अथवा यदि सूर्य या चन्द्रमा से सातवें स्थान में मंगल स्थित हो तो, अथवा यदि चन्द्रमा जिस किसी भी स्थान में हो परन्तु मंगल उससे (चन्द्र से) पृष्ठ स्थान में हो तो जातक 'अंधता' को प्राप्त होता है।[11]

यदि जातक की कुण्डली में लग्नेश, धनेश, पंचमेश, सप्तमेश और नवमेश त्रिक स्थान में स्थित हों एवं लग्नस्थान में शुक्र विराजमान हो या दृष्टि डाल रहा हो तो, अथवा द्वितीयेश मंगल द्वादश स्थान या षष्ठस्थान में स्थित हो और अष्टमस्थान में सूर्य चन्द्र स्थित हो तो, अथवा यदि त्रिक स्थान में चन्द्रमा हो एवं किसी भी त्रिक स्थान में मंगल शनि की युति हो तो जातक 'अंधता' प्राप्त करता है।[12]

यद जातक की जन्मकुण्डली में अष्टमस्थान में सूर्य, षष्ठ स्थान में चन्द्रमा, द्वितीय स्थान में मंगल और द्वादशस्थान में शनि स्थित हो तो जातक अंधता प्राप्त करता है।[13]

यदि द्वितीयस्थान और द्वादशस्थान में पापग्रह स्थित हों और द्वितीय एवं द्वादशेश किसी भी स्थान में स्थित होकर निर्बल होते हुए अस्तंगत हो चुके हों तथा द्वितीय स्थान को एवं द्वादशस्थान को पापग्रह ग्रसित कोई शुभग्रह देख रहे हों तो जातक अंधता प्राप्त करता है।[14]

यदि द्वितीयस्थान एवं द्वादश स्थान में शनि, सूर्य, मंगल एवं राहु हों तथा द्वितीयेश और द्वादशेश अस्तंगत होकर त्रिक स्थानों में बैठे हुए अपने स्वकीय स्थानों पर दृष्टिपात न कर रहे हों तो जातक अंधता प्राप्त करता है।[15]

यदि द्वितीय स्थान और द्वादश स्थान में बल हीन पाप ग्रह स्थित हों अथवा इन स्थानों पर बलिष्ठ वर्चस्ववान्(बहु रश्मिवान्) पाप ग्रह देख रहे हों तो जातक प्रस्तर प्रहार या काष्ठप्रहार द्वारा दृष्टिमांद्य एवं अंधता प्राप्त करता है।[16]

यदि त्रिकस्थान में गुरु चन्द्रमा की युति हो तो जातक को किसी औषधी के द्वार सिकताव (आसेचन Sprinking) करते हुए अंधता आती है।

अथवा यदि त्रिकस्थान में शुक्र और चन्द्र की युति हो तो कामाधिक्य से अंधता आती है। यदि त्रिकस्थान में मंगल और चन्द्रमा की युति हो तो किसी ऊँचे स्थान से गिर कर मस्तिष्क में चोट आ कर अंधता आती है। यदि त्रिकस्थान में बुध और चन्द्रमा की युति हो तो अति स्वाध्याय परायणता से अंधता आती है।[17]

यदि लग्नस्थान में विषमोदय राशिगत षष्ठेश होकर चन्द्रमा स्थित हो और वह शनि से दृष्ट हो तो कफ दोष का प्रकोप होकर जातक को अंधता आती है।[18]

यदि लग्न स्थान में शुक्र षष्ठेश होकर स्थित हो और वह किसी पाप ग्रह से दृष्ट हो तो अश्रुस्राव(Lacrimation) होते हुए अंत में अंधता आती है।[19]

यदि द्वितीयेश एवं द्वादशेश तथा लग्नेश त्रिकस्थान में स्थित हों एवं शुक्र तथा सूर्य से युति बनाते हों तो, अथवा यदि लग्नस्थान में सूर्य राहु द्वारा ग्रसित हो और त्रिकोणस्थान में मंगल शनि स्थित हों तो जातक जन्मांध होता है।[20]

यदि जातक की जन्मकुण्डली के त्रिकस्थान में पितृस्थान(दशम), मातृ स्थान(चतुर्थ), पुत्र स्थान (पंचम), जाया स्थान(सप्तम) एवं भ्रातृ स्थान(तृतीय) के स्वामी स्थित हों और वे सूर्य, चन्द्र एवं शुक्र के साथ युति बनाते हों एवं उन पर किसी भी शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो माता, पिता, भ्राता, स्त्री या पुत्र किसी भी एक या दो की अंधावस्था रहती है।[21]

यदि षष्ठस्थान में चन्द्रमा 3 पापग्रहों से युत हो एवं चन्द्रमा पर कीसी शेष पापग्रह की दृष्टि हो तो, अथवा यदि लग्न स्थान में सिंह राशिगत सूर्य चन्द्र की युति हो और इन पर मंगल शनि की दृष्टि पड़ रही हो तो जातक के नेत्रों का नाश होता है।[22]

यदि जातक का जन्म दिन का हो एवं सूर्य चन्द्र अंधांश के हों परन्तु चन्द्रमा मंगल के साथ युत हो तथा शुक्र शनि के साथ युत हो तो नेत्र नाश होता है अथवा यदि द्वितीयेश और लग्नेश त्रिकस्थान में स्थित हों तो नेत्रनाश होता है।[23]

एकाक्षित्व

यदि द्वादश स्थान में मंगल स्थित हो और सप्तम स्थान या द्वादश स्थान में चन्द्रमा हो एवं चन्द्रमा जहाँ भी हो शुक्र के साथ युति बनाता हो तो 'वामनेत्र' का नाश होता है।

यदि द्वादश स्थान में शनि हो एवं अष्टमेश और लग्नेश षष्ठ स्थान में हों तो 'दक्षिण नेत्र' नष्ट होता है।[24]

निशान्धता

(नक्तान्ध्य-श्लेष्मविदग्ध दृष्टि-रतोंधी-शवकोटि-Night blindness-Nyctalopia)

आचार्य मुकुन्द दैवज्ञ ने अधोलिखित कारण बताये हैं-

यदि त्रिकस्थान में शुक्र और चन्द्रमा की युति हो तो, अथवा यदि द्वितीय स्थान में सूर्य और चन्द्र की युति हो तो, अथवा यदि लग्न स्थान में द्वितीयेश एवं द्वादशेश हों और इनके साथ शुक्र चन्द्र भी बैठे हों तो निशान्धता उत्पन्न होती है। परन्तु यदि लग्न स्थान में द्वितीयेश और द्वादशेश अपनी स्वयं की उच्चराशि के हों और उन्हें कोई शुभग्रह देख रहा हो तो निशान्धता नहीं होती।

यदि लग्न स्थान में तुला का सूर्य हो अथवा यदि सिंह का सूर्य हो तो निशांधता आती है। यदि लग्न स्थान में मेष का सूर्य स्थित हो तो जातक मध्यम आकृति के नेत्रों से युत होता है।[25]

यदि त्रिकस्थान में चन्द्र शुक्र की युति हो तो निशांधता आती है।[26]

यदि लग्न स्थान में द्वितीयेश और द्वादशेश शुक्र चन्द्र से युत होकर बैठे हों तो निशांधता होती है परन्तु यही द्वितीयेश ओर द्वादशेश अपनी उच्च राशि के हों और शुभ ग्रह से दृष्ट हों तो निशान्धता नहीं आती।[27]

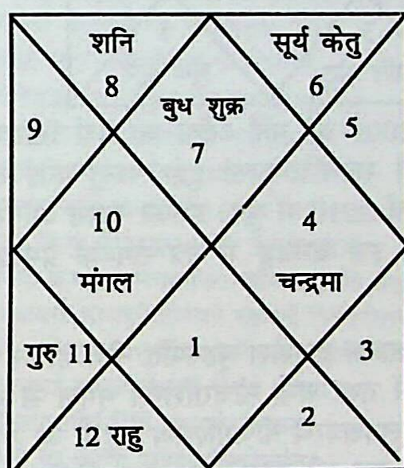
पूर्वोक्त समस्त शास्त्रीय योगों के आधार पर निष्कर्षरूपेण विभिन्न नेत्ररोगों के निर्णायक ज्योतिषीय नियम उदाहरण कुण्डलियों विश्लेषण के साथ यहाँ दिये जा रहे हैं-

1. वैदिक ज्योतिष के अनुसार जन्माङ्ग के द्वितीय तथा द्वादष्ठा भाव को नेत्र स्थान माना गया है। इन भावों तथा भावेशों का पापपीड़ित होना नेत्ररोग का कारण होता है
2. सूर्य व चन्द्रमा के साथ-साथ शुक्र भी नेत्रज्योति कारक है। इन पर पापग्रहों की दृष्टियुति भी नेत्र विकार या दृष्टि दोष दिया करती है।
3. सूर्य+चन्द्रमा+शुक्र की युति त्रिक में हो तथा द्वितीय एवं द्वादश भाव पापक्रान्त हों तो नेत्र रोग होते हैं।

4. नेत्र रोग के कारकभाव=द्वितीय+द्वादश।
5. रोग के सम्बन्ध में विचारणीय अन्य पूरकभाव=लग्न+षष्ठ+अष्टम।
6. नेत्ररोग में विचारणीय प्रमुख ग्रह= सूर्य+चन्द्र+शुक्र।
7. नेत्र रोग में सहायकग्रह= द्वितीयेश+द्वादशेश, द्वितीय एवं द्वादश में स्थित ग्रह।
8. द्वितीयेश+शुक्र+चन्द्र+त्रिकस्थ= रात्र्यन्ध रोग।
9. लग्नेश+शुक्र+सूर्य-त्रिकस्थ= मन्ददृष्टि।

नेत्ररोग का ज्योतिषीय विश्लेषण कुण्डली संख्या-1

जन्म तिथि- 30 सितम्बर 1986, जन्मसमय- 9:40 am, स्थान- दिल्ली



प्रस्तुत जन्माङ्ग वाले जातक की बाँई आँख में चोट लगी इस कारण दृष्टि की लगभग पूर्ण हानि तथा कर्नियल ओपेसिटि (Corneal Opacity) हो गई। आँखों से तथा दृष्टि से सम्बन्ध रखने वाले सभी भाव तथा ग्रह पीड़ित हैं। शुक्र में राहु की अन्तर्दशा में इनकी आँख में चोट लगी और उसकी दृष्टि चली गई। दूसरी आँख में भी दृष्टि मान्द्य है। इस जन्माङ्ग को अगर हम देखें तो नेत्र के प्रमुख कारक ग्रह सूर्य एवं चन्द्र दोनों पाप पीड़ित हैं, इसके साथ ही द्वितीय एवं द्वादश भाव के साथ-साथ इन भावों के स्वामी मंगल एवं बुध भी पाप प्रभाव में हैं। बाँई आँख के कारक बारहवें भाव में सूर्य+केतु की स्थिति तथा द्वादशेश बुध पापाक्रान्त है। दाहिनी आँख के कारक द्वितीय भाव में शनि की स्थिति तथा द्वितीयेश मंगल पर शनि की पूर्ण दृष्टि होने से तथा नेत्र का प्रमुख प्रतिनिधि ग्रह चन्द्रमा भी आश्लेषा नक्षत्रस्थ है। इन सभी के आधार पर नेत्रव्याधि के स्पष्ट संकेत मिलते हैं।

कुण्डली संख्या-२

जन्म तिथि- ४ सितम्बर १९७३, जन्मसमय- ५:०० pm, स्थान- इलाहाबाद



इस जातिका का सितम्बर 2009 को बाँई आँख का पर्दा खिसक गया था। इस सम्बन्ध में अक्टूबर 2009 में इसकी आँख की शल्यचिकित्सा हुई। परन्तु कोई लाभ नहीं हो पाया। बल्कि इसकी स्थिति और खराब हो गई मार्च 2010 में पुनः इसका दूसरा ऑपरेशन हुआ और तव से कुछ सुधार है परन्तु सन्तोषजनक नहीं है। इस जन्माङ्ग में नेत्र रोग के प्रमुख विचारणीय भाव, ग्रह एवं पूरक भाव सभी पाप प्रभाव में हैं।

जन्माङ्ग में बाईं आँख का कारक द्वादशेश बृहस्पति नीच होकर लग्न में स्थित है। नेत्रज्योति कारक सूर्य अष्टमेश होकर अष्टम में तथा चन्द्र नीचराशिगत मंगल से दृष्ट है। द्वितीयेश शनि; केतु के साथ रोग भावस्थ है, बारहवें में मूलनक्षत्रस्थ नीचराशिस्थ राहु है जो रोग के सम्बन्ध में सही निदान नहीं होने देता। हमेशा भ्रम में रखना राहु की प्रकृति है। अतः चिकित्सक इस जातिका के नेत्र की व्याधि का सही ढंग से निदान नहीं कर पाये। परिणामतः इसे लगातार नेत्र कष्ट सहना पड़ा। इस प्रकार शास्त्र में प्रतिपादित नेत्ररोग से सम्बन्धित योग व्यावहारिक धरातल पर सही उतरते हैं, आवश्यकता केवल इस बात की है कि शास्त्रीय योगों का विश्लेषण समग्र सन्दर्भ में किया जाय। ऐसा करने पर रोग एंव योग का सही-सही आकलन किया जा सकता है।

संक्षेप में ज्योतिष स्वयं को समझने का सुलभ एवं प्रामाणिक मार्ग प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर व्यक्ति अपनी सकारात्मक एवं नकारात्मक, जन्मजात एवं सम्भावित प्रवृत्तियों को समझ कर उनमें आवश्यक परिष्कार एवं संस्कार करते हुए संतुलन एवं सामञ्जस्य स्थापित करके रोग-मुक्त जीवनयापन कर अपने आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक ऋणों के निवारण में समर्थ हो सकें। इस शास्त्र का उपदेश करने में ऋषियों का यही अभीष्ट प्रतीत होता है अन्यथा निर्जन अरण्यों में सर्वस्व त्यागकर आत्मज्ञान से पोर-पोर सरावोर होने वाले ऋषियों के पवित्र जीवन में चत्मकार प्रदर्शन का सम्बन्ध कभी रहा ही नहीं था, उन्होंने इस विद्या को मानव को नियति पाश में जकड़ने, भाग्य के हाथों गिरवी रखने के लिए नहीं अपितु उसे अपने बन्धन की श्रृंखलाओं को समझने एवं अनसे मुक्त होने के सफल संघर्ष की मंगलमयी कामना के साथ रचा था।

1 अष्टाङ्गहृदयम् 3.13
2 जातकतत्त्वे प्रकीर्णतत्त्वान्तर्गत-प्रथमविवेकः श्लो. सं-221
3 तत्रैव
4 वीरसिंहावलोकः नेत्ररोगाधिकारः पृ.सं.-623
5 जातकतत्त्वे प्रकीर्णतत्त्वान्तर्गत-प्रथमविवेकः श्लो.सं-226
6 पङ्केक्षितेऽत्रिजकपी विषमोदयर्क्षे वाकारिगौ किमुदिवा तरणौ प्रनष्टे।
वक्रेक्षितान्वित उत हानि वक्रराशौ नष्टे रवौ शशिनि कर्कगतेऽन्तभागे।
किं वक्रभे वा त्रिकगावसौम्यैरालोकितौ पङ्कजबोधनाब्जौ।
वाक्षिद्वयेऽचारुवियच्चरेन्द्रैः सन्दीप्तदेहैः परिपूर्णवर्यैः।
संवीक्षिते वाक्षिपयोः सपादयोः सप्राणयोश्चेदपि वक्रलोचनः।।
7 जातकतत्त्वे प्रकीर्णतत्त्वान्तर्गत-प्रथमविवेकः श्लो.सं-273-276
8 रोगेशारौ कल्पगौ नेज्यकाव्यदृष्टौ यद्वा पश्यतो नात्मगेहे।
दृष्टीशानौ साशुभौ शौर्ययुक्ते चक्षुस्थाने जायते अक्ष्णा स काणः।।
कुलीरगेणांशुमताऽऽवनेयो वधूभगौ वा विधुनेक्षितः सः।
कण्ठीरवस्थेन तपोगृहेशे मृगाजलेयालिगते स काणः।।
होरास्थमिन्दुं किमुलोहिताङ्गं पश्येद्गुरुश्चेदुशना स काणः।
कुजेक्षिते कर्किणि कामगेऽर्के वारेक्षितेऽस्ते मृगराज इन्दौ।।
किमर्थपोऽतङ्गत उग्रयुक्तः पश्येन्न पोष्यं कपिपङ्गुयातैः।
स्वगैः किमन्त्येऽगुभगौ व्ययस्य नाथोऽस्तगे संयुत अर्कण वा।।
भूसूनुनाथास्तमिते कवौ किमु कुजेऽङ्गजेऽथेन हिमांशुदृष्टयोः।
इलाकुमारास्फुर्जितयोर्यदा क्रमात्स्वान्त्यस्थयोः काण उदीर्यते तदा।।
शुक्लेऽह्नि सासृजि विधावथ भव्यदृष्टिहीनेयने दहनगौ निशिनीलपक्षे।
सोषाविभावसितरौचिषि वामकाणो भूर्ध्वे दिने दिनकरे दहनेक्षमाणे।।
दक्षाक्षिकाणोऽमलदृग्विमुक्ते पापाक्षितेऽब्जे रिपुवे तथैव।
भूजेऽरिपेऽङ्गे न शुभेक्षितेऽसन्निरीक्षिते पुष्प्युतेऽत्र काणः।
सच्छिकलेशे चरमे स्मरे वा काणो भवेद्वामविलोचनेन।
कोणोऽक्षियातः कलुषेण युक्तः करोति काणं किमु मन्दनेत्रम्।।
9 गदात्ययोर्गर्हितलोकितेऽब्जे नीचेऽथ मूढे हरिजे कुजे वा।
केन्द्रेऽम्बुभेऽन्धांश इनाब्जयोर्वा निम्ने यमेऽर्कग्रहणे विमूढे।।
किंक्षीण इन्दौ धनुषीनजेन दृष्टेन विप्रग्रहलोकिते वा।
कृशे मृगाङ्के मृदुसंयुतेऽश्वे नालोकिते सद्द्यचरैरथार्कात्।।
कलेश कोशे कनुषार्द्दिते वा खेऽब्जे न सल्लोकित उग्रदृष्टे।।
किं ग्लावि नक्तं तपनेऽह्नि चापाद्यांशेऽन्त्यभागे मृदुनेक्षिते वा।।
सार्थाकपत्योः पुरपाच्छयोस्त्रिके बार्थे विधौ साघसितेऽगि लोहिते।
केन्द्रेऽघभेऽथान्त्य इनाब्जयोः शुभैर्नो दृष्टयोर्वायमभे विभावसौ।।
कामेऽथ काये कलशे कुजेऽथ वा सौख्याश्रिते सूनुसुतेऽसप्तेक्षिते।
अथाङ्गतोऽच्छादुत पन्नगे मतौ मार्त्तण्डिदृष्टे तत इन्दुभास्वतोः।।
केन्द्रेऽनजेुऽथो सहरौ पुरे यमे यद्वा सितेऽथाशभयोर्हिते चिति।
दृष्टे न रम्यैस्त्रिकगे तमीपतौ किं वाऽवसानेऽसितगौ सितद्युतौ।।
कोशालये घर्मघृणौ रणे ततो यथा तथा मन्दकुजेन्दुतापनाः।
स्वान्यारिशान्तेषु समाश्रिता यदा वीर्य्यान्विता काशगदोषहेतुभिः।।
स्यादन्धता पावकलोकितैः शभैस्त्रिकेऽथ कर्केऽब्जयमौ न साधुभिः।

दृष्टौ किमिन्दौ द्विषि नोत्तमेक्षितेऽरिभे सपङ्के मलिनेक्षिते तथा।।
10 क्रूरान्तरालेऽर्कविधूदयत्रये किमङ्गपेऽर्के खलपीडितेऽङ्गे।
वारावधेऽङ्गे रुधिरेव वक्रितेऽरीशे विधूर्ध्वं पुरुषोऽन्धतां व्रजेत्।।
11 देहे खले तनुगृहेश्यशुभोपयाते रम्येतरान्गरगयो रजनीशरव्योः।
वेन्द्वर्कयोर्मनसिजेऽसृजि शीतलांशोः पृष्ठोदिते किमुत रक्तकरे नरोऽन्धः।।
12 स्वाङ्गास्तधीनियतिपैस्त्रिकगैः शरीरसम्बन्धिनीन्द्ररिपुमन्त्रिणि वार्थगेऽहे।
रिःफरिगे मिहिरजे मरणे रवीन्द्वोर्वाब्जे त्रिकेऽसितयुतेऽसृजि नष्टनेत्रः।।
13 नभोमणौ निमीलनेऽहितोपगे हिमद्युतो।
कुटुम्बगे कुनन्दने व्यये यमेऽन्धतां लभेत्।।
14 विलोचनद्वये खलैः प्रपीडिते तदीशयोर्विनष्टयोर्बलोनयोः।
विलोकयन्ति पामरार्दिताः शुभा विलोचनद्वयं तदान्धको भवेत्।।
15 पतङ्गभूपिङ्गलमङ्गलोरगैः समाश्रितैश्चेद्यदि लोचनद्वये।
नष्टोऽक्षिपोऽरिष्टगृहे न लोचनं पदं स्वकीयं नहि वीक्षतेऽन्धकः।।
16 यस्याङ्गिनो नयनभे विषवाधयुक्ते यद्वा प्रदीप्तबलसंयुतगर्हितेन।
आलोकिते जनुषि मन्दविलोचनो वा पाषाणाष्ठजनितो नयने प्रहारः।।
17 सेज्ये सोमेऽरिष्टगे सेकतोऽधः कामादन्धो दृष्टगे साच्छसोमे।
पातादन्धः सामसोमे त्रिकस्थे दुःस्थे सज्ञे शीतगरौ शास्त्रतोऽन्धः।।
18 सुधामरीचावुपतापभावसम्पालके वक्रितभेऽङ्गमाप्ते।
विलोक्य माने पतनात्मजेन तदान्धता श्लेष्मकदोषतः स्यात्।।
19 मधाजे मान्द्यपे मूर्तौ मलिनैर्लोकतेऽन्धता।
नरस्त्रावेण नारीस्थैः पङ्कैर्नेमेर्विवर्णता।।
20 त्रिकस्थयोः सार्कभयोः कलेवरदृङ्नाथयोर्वा भभगान्वितेऽङ्गपे।
त्रिकेऽथ कोणे कुजकोणयो रवौ ग्रस्तेऽगुनाङ्गे जननान्धतां व्रजेत्।।
21 ताताधिकादारकदारसोदरभावाधिपैः सेनसुधाङ्गभार्गवैः।
त्रिकोपगैर्नामललोकितान्वितैस्तेषां वदन्त्यन्धकतां विपश्चितः।।
22 आनेयदृष्टेऽत्रिसुतेऽहितस्थे युक्ते त्रिभिः पावकखेचरैर्वा।
पञ्चाननेऽङ्गे सहिते हरिभ्यां यमारदृष्टे सति नेत्रनाशः।।
23 वासरेऽन्धलवगे प्रभाकरे पर्वरौ कुतनये सपर्वरौ।
सोष्णईधितभवे मघाभवे यस्य जन्मनि सदक्षिनाशनम्।।
कलेवरेशेन युतेऽर्थनाशे त्रिकाश्रिते लोचनयोः क्षतिः स्यात्।
निधानधामाधिपतौ त्रिकस्थे तथाविधेऽङ्गेश्यपि नेत्रनाशः।।
24 हिनस्ति वामं नयनं व्यये कुजस्ततः समेते कविना कलावति।
कन्दर्पगे वाकनिकेतसंश्रिते विलोचनं वाममुपैति नाशताम्।।
द्वादशे दिनकरात्मजे यदा दक्षिणं नयनमेति नाशताम्।
पञ्चतोदयप्योर्गदस्थयोर्दक्षिणे भवति लोचने गदः।।
25 त्रिके सति सोमयुते किमिन्दु भास्वत्समेते गिरिनैशिकान्धः।
आद्येऽक्षिपे सेन्दुसिते निशान्धः स्वोच्चे सचारौ न तथा भवेत्सः।।
तुलाधरं तनौ रवौ निशान्धताहरौ तनौ।
इनेऽक्षिरोगयुक् तनौ क्रिये भगे च मध्यदृक्।।
26 सेन्दुशुक्रस्त्रिकस्थो निशान्धः।(आचार्य महादेवः)
27 शुक्रेन्दुयुते नेत्रशेऽङ्गे निशान्धो न तु स्वोच्चशुभैर्युते।



श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

नवदेहली-110016